(6)

श्रीः

वैष्णवी देवी रहस्य

डा० बलजिन्नाथ पण्डित

त्र्यम्बक प्रकाशन।

प्रकाशक—त्र्यम्बक प्रकाशन, कुलगाम, कश्मीर।

पुनर्मुद्रण के सभी अधिकार प्रकाशक के आयत्त।

प्रथम संस्करण—१००० सन् १९८३

मूल्य—८ रुपये

मुद्रक—मगोत्रा प्रिंटिंग प्रैस, गली खिलौनेआं जम्मू।

पुस्तक मिलने के पते :—

१. डा. गिरिजा शर्मा, नं० ५३-A गान्धी नगर जम्मू।

२. डा. पशुपति नाथ पण्डित, कुलगाम, कश्मीर।

३. श्री योगेश पण्डित, नं० ९४-A
पम्पोश कोलोनी, नटीपुरा, श्रीनगर।

४. श्री ऐस. के. पण्डित, ३९२, हाऊसिंग बोर्ड-कोलोनी,
फरीदाबाद, सेक्टर—२२।

५. श्री प्रभाकरनाथ पण्डित, नं० १२९-E,
ग्रेटर कैलाश नं० १, नई दिल्ली।

विषय-सूची

———

प्राक्कथन

श्री वैष्णवी माता के विषय में अनेकों आख्यान सुनने में आते हैं। पुस्तकें भी छोटी मोटी बहुत मिलती हैं, परन्तु शास्त्र प्रमाणों के आधार पर लिखी गई कोई भी पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई। उसी कमी को पूरा करने के लिए इस लघु पुस्तिका का निर्माण हुआ है और प्रकाशन हो रहा है। शक्ति-पूजा यद्यपि अनेकों विविध शास्त्रों में पर्याप्त मात्रा में मिलती है फिर भी इसका विशेष निरूपण आगम शास्त्रों में ही किया गया है। इसी हेतु से इस पुस्तिका का निर्माण तांत्रिक आगमों के आधार पर ही किया गया। उन आगम शास्त्रों का आश्रय लेने से ही इस पुस्तिका के द्वारा वैष्णवी माता के विषय में अनेकों रहस्यों का स्पष्टीकरण किया जा सका है।

शाक्तदर्शन के ज्ञान के लिए जिज्ञासु साधकों को त्रिपुरा-रहस्य के ज्ञान खण्ड को पढ़ना चाहिए। शाक्त साधना के उच्चतर प्रकारों का निरुपण 'तन्त्रालोक' जैसे उत्तम ग्रन्थों में मिल सकता है। उस दर्शन के सिद्धान्तों के ज्ञान का आश्रय लेकर के ही वैष्णवी माता के विषय में अनेकों गूढ रहस्यों पर इस ग्रन्थ के द्वारा प्रकाश डाला जा सका है।

पुस्तिका के सम्पादन, प्रकाशन आदि में डा. गिरिजा शर्मा ने काफी सहायता की और प्रूफ संशोधन में डा. ब्रजनन्दन जी शर्मा ने। इस बात के लिए मैं उन दोनों महानुभावों के प्रति आभार प्रकट कर रहा हूं।

———

वैष्णवी देवी

△

वैष्णवी पीठ :

भारतबर्ष में अनेकों शक्तिपीठ हैं जिनमें कामाख्या, पूर्ण-गिरि, जालन्धर (कांगड़ा) और ओडियान नाम के चार पीठ विशेषतया प्रधान हैं । कश्मीरमण्डल को मेधापीठ कहते हैं । सारे जम्मू कश्मीर राज्य में स्थान स्थान पर देवियों के पीठ हैं जहां सहस्त्रों भक्तजन देवी की उपासना से मनोवांछित फल सदा पाया करते हैं। कश्मीर मण्डल में विशेष प्रसिद्धि श्रीनगर के शारिका पीठ की, तूलमूला के महाराज्ञो पीठ (क्षीर भवानी) की, रिव्रव में ज्वालापीठ की, बारामुला में शैलपुत्री पीठ की और देवसर में त्रिपुरसुन्दरी पोठ की है । इन पीठों की विशेष महिमा को जनता अभी मानती है । वैसे सारे कश्मीर मण्डल की मुख्य देवी शारदा है जिसका पीठ वर्तमानकाल में पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में है । जम्मू प्रान्त में भो अनेकों ही शक्तिपोठ हैं जिनमें सब से अधिक

महत्त्व वैष्णवी देवी के पीठ का है। यह पीठ जम्मू से उत्तर दिशा में कटड़ा नामक स्थान के पास एक पर्वत की ऊंची घाटी में विद्यमान है। उस पर्वत के तीन ऊंचे शिखर साथ साथ खड़े दीखते हैं। इस कारण से उसका नाम त्रिकूट पर्वत है। अन्य शक्तिपीठों में वर्ष में किन्हीं विशेष तिथियों पर यात्रा लगती है, परन्तु वैष्णवी पीठ में यात्री वर्ष भर लगातार आते ही रहते हैं। कभी यदि भारी हिमपात हो जाए तो कुछ एक सप्ताह के लिए यात्रा को बन्द किया जाता है, नहीं तो सदा चलती ही रहती है और यात्री दिन रात आठों पहर बारी बारी दर्शन करते ही रहते हैं। देवी की प्रतिमा एक गुफा के भीतर विद्यमान है। गुफा के भीतरीय गर्भगृह में दाईं ओर तीन पिण्डियां हैं जिन्हें महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती नाम से जाना जाता है। उन पिण्डियों के सामने बाईं ओर एक और पिण्डी है जिसे शिवजी की पिण्डी माना जाता है। गुफा का द्वार ऐसा है कि यात्री एक-एक करके ही भीतर जा सकते हैं। जम्मू कश्मीर राज्य के धर्मार्थ ट्रस्ट ने गुफा के भीतरीय कोने के पास एक सुरंग बना दी है जो यात्रियों के लिए गुफा से निकलने का मार्ग बन गया है। दिन रात यात्री गुफा के मुख में से एक-एक करके प्रवेश करते जाते हैं और देवी के दर्शनोपरान्त सुरंग के द्वार से निकलते रहते हैं।

वैष्णवी माता के भवन में दर्शनमात्र के लिए समय मिलता है क्योंकि यात्रियों की श्रेणी आगे आगे आती ही

रहती है। वैष्णवी देवी के भक्तों ने दिल्ली, हिमाचल आदि स्थानों में भी उसके मन्दिर बनाए हैं, परन्तु वैष्णवी पीठ की यात्रा को भी वे आते ही रहते हैं। वैष्णवी देवी का यह पीठ सारे पंजाब, जम्मू, सीमाप्रान्त, हिमाचल प्रदेश तथा हरियाणा के हिन्दुओं और सिक्खों का भी मुख्यतया पूज्य पीठ है। पंजाबी हिन्दु जहां जहां जाकर बस गए हैं, वहां वहां से अब भी वैष्णवी पीठ की यात्रा का आया करते हैं।

पश्चिमी भारत के अनेकों नगरों से बसें सीधी कटड़ा तक या कम से कम जम्मू तक आती हैं। कटड़ा से पहाड़ पर पैदल चढ़ना होता है या घोड़े अथवा पालकी का प्रबन्ध करना होता है। पहाड़ पर चढ़ने के लिए टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग बनाया गया है जिसके किनारे के साथ-साथ बिजली के खम्बे हैं जिन पर बिजली के लाटू लगे हैं। रात के समय दूर दूर से सारे जगमगाते हुए पर्वत का दृश्य अतीव मनोहर लगता है। कटड़ा से आगे चलकर पर्वत के दामन में बाणगङ्गा नामक तीर्थ है। चढ़ाई के आरम्भ में चरणपादुका तथा बीच में अधकुंवारी (आद्याकुमारी) के मन्दिर हैं। ऊपर भैरव-मन्दिर है और वहां से घाटी में उतर कर आगे वैष्णवीपीठ है। ये मुख्य देवस्थान यात्रा में आते हैं।

शङ्काएं :

वैष्णवी पीठ में प्रतिष्ठित माता वैष्णवी देवी के विषय में अनेकों परम्परागत आख्यान सुनने में आते हैं। कटड़ा में

इस विषय पर कई एक छोटी बड़ी पुस्तकें भी हिन्दी, उरदू व अंग्रेज़ी में बिकती हैं। परन्तु इतना कुछ होते हुए भी अभी तक वैष्णवी देवी के विषय में अनेकों प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल रहे हैं। सुने सुनाए आख्यान कहां तक सत्य हैं और कितने अंश में कल्पित हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। इन आख्यानों के आधार प्राचीन पुराण इतिहास के ग्रन्थों में अभी तक कहीं भी नहीं मिले हैं। फिर जो पुस्तकें मिल रही हैं तथा जो आख्यान सुने जाते हैं, उनमें से निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते हैं। लोग ये बातें जानना चाहते हैं कि—

वैष्णवी देवी का अधिकार किस स्तर का है, देवगणों से ऊंचे स्तर का है या नीचे स्तर का? ॰ष्णवी देवी का भगवान् विष्णु से क्या सम्बन्ध है? क्या वैष्णवी विष्णु-प्रिया लक्ष्मी है या कोई और देवी है? (साधारण जनता इसे विष्णु-प्रिया लक्ष्मी का ही एक विशेष रूप मानती है। सम्भवतः लोगों में प्रचलित ऐसी धारणा का आधार वैष्णवी देवी का यह "वैष्णवी" नाम ही है)। वैष्णवी देवी और भैरव के पारस्परिक संघर्ष की कथा का मूल आधार क्या है? क्या वैष्णवी दुर्गा ही है या महाशक्ति का कोई और रूप है? यदि दुर्गा ही है तो इसे वैष्णवी क्यों कहते हैं? यदि दुर्गा से अन्य है तो इसकी पूजा महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती इन तीन रूपों में क्यों की जाती है? ये तीन रूप तो दुर्गा के ही हैं और वैष्णवी पीठ की गुफा

में भी तीन पिण्डियां इन तीन नामों से प्रसिद्ध हैं । देवी की इन तीन पिण्डियों के सामने चौथी शिवजी की पिण्डी होने का क्या तात्पर्य है ? शिवजी की वह पिण्डी गुफा के भीतर देवी के सामने की ओर क्यों है, देवी की पिण्डियों के साथ क्यों नहीं है ? कौन ऐसा भैरव हो सकता है जो देवी के साथ अन्याय करने को तत्पर हो जाए ? फिर किस भैरव की ऐसी सामर्थ्य है कि देवी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका पीछा करे ? जिस दुष्ट भैरव को देवी ने अपने हाथों प्राणदण्ड दे दिया उसी भैरव की पूजा भैरव मन्दिर में क्यों की जाए ?

इस इस प्रकार के विचार यात्रियों के मन में उठते हैं । ऐसी शङ्काओं का समाधान न तो कटड़ा में मिलने वाली पुस्तकों से होता है और न ही परम्परागत आख्यानों से । कूर्म, वाराह आदि पुराणों में वैष्णवी के आख्यान तो मिलते हैं परन्तु उनसे भी ऊपरोक्त शङ्काओं का समुचित समाधान नहीं होता है । इसलिए इस विषय पर विशेष गवेषणा की आवश्यकता है ।

आगमिक विद्या :

शिव और देवी की उपासना की परम्पराएं मूलत: आगमिक परम्पराएं हैं । ये परम्पराएं वैदिक परम्पराओं के साथ साथ सहस्रों ही वर्षों से चलती आ रही हैं । आगमिक परम्पराओं के मर्मों को रहस्यात्मक माना जाता था । उन्हें गुरु ही शिष्य को बताया करता था । उन्हें पुस्तकों में लिखा

नहीं जाता था। यह प्राचीन ऋषियों और मुनियों की नीति थी। अतः आगमिक रहस्यों को परम्पराएं गुरुओं और शिष्यों के द्वारा मौखिक उपदेशों हो के माध्यम से चलती रहीं। उस तान्त्रिक आगमविद्या से उद्‌बद्ध होने वाले अद्‌भुत सामर्थ्यों को साधारण मानव सम्हाल ही नहीं सकते। उनके हाथों उन सामर्थ्यों के दरुपयोग होने की ही सम्भावना हो सकती है। इसीलिए तांत्रिक विद्याओं के गुरु इस विद्या को लिखकर नहीं रखते थे। यदि कभी लिखते भी थे तो अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखा करते थे, क्योंकि स्पष्ट लिखी हुई बात कभो भी किसी अनधिकारी के हाथ में पड़ सकती है और उसका दुरुपयोग हो सकता है।

सहस्रों वर्ष यह आगमिक विद्याएं इसी तरह से चलती रहीं। कालान्तर में कुछ एक बौद्ध, जैन और वैष्णव साधकों ने किसी उपाय से इन विद्याओं को सीख लिया। उनकी शिष्य परम्पराओं में किन्हीं विद्वानों ने इन विद्याओं को स्पष्ट लिख हो डाला। उसके फलस्वरुप विविध वैष्णव आगमों का निर्माण हुआ जिन्हें पांचरात्र आगम कहते हैं।

दूसरी ओर से अनेकों बौद्ध तन्त्र लिखे गए जिनके आधार पर बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा का निर्माण और विकास हुआ। उसी वज्रयान ने आगे तिब्बत और मंगोलिया में लामाधर्म के रूप को धारण किया। जापान के जेन नामक बौद्ध धर्म का मूल आधार भी तांत्रिक शैव योग की परम्परा ही है। बौद्धों और वैष्णवों ने आगमिक साधना को

अपने अपने धर्म के साथ अनुकूलतया बिठाने के लिए उसे पर्याप्त मात्रा में विकृत रूप में प्रस्तुत किया । जैनों ने भी ऐसा ही किया। विशेष करके ऐसा काम वज्रयानी बौद्धों ने किया । उन्होंने आगमिक विद्या में से ईश्वरवाद और आत्मसत्ता के सिद्धान्त को दूर हटाकर तन्त्रविद्या को अपने क्षणिक-विज्ञानवाद के सिद्धान्त के अनुकूल सांचे में ढालकर ही उसे जनता के सामने प्रस्तुत किया । ऐसा होने पर शैवों और शाक्तों को आगमिक साधना के वास्तविक स्वरूप को और उसके आस्तिक दर्शन सिद्धान्तों को प्रकाशित करने के लिए उस आगमिक विद्या को लिखकर के ही रखना पड़ा । इस अभिनव नीति के प्रयोग के फल के रूप में दक्षिण के कामिक, योगज आदि दस शिव-आगमों का और विजय, निःश्वास आदि अठारह रुद्र-आगमों का और उन पर आश्रित पौष्कर आदि उपागमों का निर्माण हुआ । उत्तर भारत में इसी तरह से पहले चौंसठ भैरव आगमों का और पश्चात् तीन त्रिक आगमों का, तीन ऊर्ध्वोर्ध्व आगमों का तथा कई एक उपागमों का निर्माण हुआ। ये सभी आगम शैवों के आगम हैं। शिव-आगम भेदवाद की दृष्टि को अपनाकर ही शैव-दर्शन का उपदेश करते हैं । रुद्र आगमों ने भेदाभेदमयी दृष्टि को अपनाया। चौंसठ भैरव आगम और तीन त्रिक आगम तथा तीन ऊर्ध्वोर्ध्व आगम अभेददृष्टि प्रधान आगम हैं।

शाक्त गुरुओं ने भी ऐसी ही नीति का आश्रय

लेकर कुछ एक शाक्त आगमशास्त्रों की रचना की। उनमें से साधना प्रधान मुख्य आगम हैं—कुलार्णवतन्त्र, कुलचूड़ामणितन्त्र, देवीरहस्य आगम इत्यादि। शाक्त आगमों में दर्शन सिद्धान्तों का निरूपण विशेषतया त्रिपुरारहस्य के ज्ञानखण्ड में किया गया है। शाक्त गुरुओं ने विशेषतया श्रीविद्या की उपासना का प्रचार किया। उस परम्परा का एक विशिष्ट शास्त्र मातृकाचक्रविवेक है, जिसे स्वतन्त्रानन्द-नाथ ने लिखा। दूसरा अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ है चिद्गगनचन्द्रिका, जिसके निर्माता श्रीवत्सनाथ हैं। क्रमनय नामक काली-उपासना के प्रवर्तक एक शिवान्दनाथ नामक सिद्ध थे जिनकी परम्परा कश्मीर के शैव गुरुओं में प्रचलित थी। वस्तुतः शैव दर्शन और शाक्त दर्शन कोई भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के दर्शन नहीं हैं। शैवों के ही साधनापक्ष को शाक्तदर्शन कहा गया है और शाक्तों के ज्ञानपक्ष को शैवदर्शन कहा गया है।

शैवदर्शन की दृष्टि में प्राप्त करने के योग्य जो परमपद है उसकी प्राप्ति का उपाय शाक्तसाधना है। शाक्तों की साधना के अभ्यास से जो पद मिलता है वह शिवभाव ही है। इन साधकों में से जिन्होंने परमेश्वर के विश्वात्मक शक्तिभाव के प्रति विशेष श्रद्धा को प्रकट किया वे शाक्त कहलाए और जिन्होंने शिवभाव ही के प्रति विशेष आदर को प्रकट किया वे शैव कहलाए। इसीलिए आ० सोमानन्द और आ० उत्पल-देव जैसे शैवगुरुओं ने भट्ट प्रद्युम्न आदि शाक्तों को

"स्वयूथ्य" अर्थात् उनके अपने ही वर्ग का गुरु कहा। अस्तु।

आगमिक साधनाएं त्वरित फल देने वाली होती हैं। उनके अभ्यास से अनेकों योगसिद्धियां उद्बुद्ध हो जाती हैं। उनसे योगी में आश्चर्यजनक सामर्थ्यों का आविर्भाव हो जाता है। उन सामर्थ्यों को पाकर के उनका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। उस दुरुपयोग से दैवी प्रशासन में अनेकों प्रकार की बाधाएं खड़ी हो जाती हैं जिनसे दैवी प्रशासक अधिकारियों को बहुत ही कष्ट होता है। इस संसार में भी अनेकों व्यक्ति उन सामर्थ्यों के दुरुपयोग के शिकार बन जाते हैं। तांत्रिक सिद्धियों के इस प्रकार के दुरुपयोग ही के कारण अर्वाचीन काल में तन्त्रविद्या अपकीर्ति का पात्र बनती गई। वर्तमान युग के आरम्भ में भी तन्त्रविद्या को जादू की विद्या ही समझा जाता रहा। अब अब विचारशील महानुभावों की दिलचस्पी तन्त्रविद्या में बढ़ने लगी है। शैव और शाक्त तन्त्रों के प्रधान गुरुओं ने अभी तक अतीव रहस्यमय साधनाओं को गुप्त ही रखा है। उन्होंने एक तो ऐसी बातों को रहस्यवाद की भाषा में बताया है। उसका यह फल होता है कि इस विद्या के दीक्षित उपासक को ही समझ में वह बातें आ जाती हैं, साधारण पाठक की समझ में नहीं आती हैं। इस तरह से वह विद्याएं पर्याप्त मात्रा में दुरुपयोग से बची रहती हैं। दूसरी उनकी नीति ऐसी है कि रहस्य साधना के सभी अंगों को एक ही प्रकरण में प्रायः लिखा नहीं जाता है। उनको

भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न प्रकरणों में बताया जाता है। आ० अभिनवगुप्त ने स्पष्ट कहा है कि आ० शम्भुनाथ ने उन्हें यह आदेश दिया है कि अति रहस्य वाली बात को एक ही प्रकरण में नहीं बताना चाहिए और उसे सर्वथा छिपाए भी नहीं रखना चाहिए "नाति रहस्यमेकत्र ख्याप्यं न च सर्वथा गोप्यम् इति ह्यस्मद्गुरवः" (तं. सा. पृ. ३१)। इसी प्रयोजन से शैवों और शाक्तों ने अब भी तन्त्रविद्या के रहस्यों को छिपाकर ही रखा है। यदि वे ऐसा न करते तो आजकल के साधक उनका दुरुपयोग ही करते। दैवी प्रशासन में जब कोई तन्त्रिक हस्तक्षेप करता है तो कर्मफल भोग के अटूट नियम को चलाए रखने में अनेकों प्रकारों की बाधाएं आती हैं। इसीलिए इस विद्या का रहस्य प्राचीन युगों में उसी साधक को बताया जाता था जो तन्त्रविद्या के अनुशासन पर ठीक तरह से चल सकता था और जिसमें वैराग्य और विवेक उतनी मात्रा में अवश्य विद्यमान होते थे जितनी मात्रा तन्त्रविद्या को दुरुपयोग से बचाए रखने में सफल हुआ करती थी। तन्त्र की सिद्धि अनोखी महाशक्ति वाला परमाणु-अस्त्र है। यह ऐसे वैसे मानव के हाथ में नहीं पड़ना चाहिए। तभी यह दुरुपयोग से बचा रहेगा।

शक्ति का महत्त्व :

शिव और शक्ति वस्तुतः दो पदार्थ नहीं हैं। एक ही मूल तत्त्व को पूरी तरह से समझाने के लिए उसके वास्तविक

स्वरूप की व्याख्या दो प्रकार से की गई है और तदनुकूल दो नाम उसे दिए गए हैं। सारे संसार का बीजभूत मूल तत्त्व एक ही है जिसे परमशिव या परब्रह्मतत्त्व कहते हैं। उसका स्वरूप एकमात्र शुद्ध चैतन्य है जो अपने स्वभाव से ही परम आनन्दमय है। उस शुद्ध और असीम चैतन्य में वह पारमेश्वरी शक्ति विद्यमान है जिसके बूते से वह चित्स्वरूप ब्रह्म सृष्टि-संहार आदि करता रहता है। उस शुद्ध चैतन्य को अपनी सत्ता का भी सततगति से विमर्शन होता रहता है और अपनी स्वभावभूत परमेश्वरता का भी। अपनी परमेश्वरता का जो विमर्शन उसे होता रहता है उससे उसे एक अपूर्व, अवर्णनीय तथा सर्वथा असीम चमत्कार सदैव होता रहता है। वह चमत्काररूपता ही उसकी आनन्दमयता है। आनन्द के अतिरेक से उसमें अपने सामर्थ्यों को अभिव्यक्त करने के प्रति उमङ्ग उठती है जो मानो कि उसके आनन्द समुद्र में उठने वाला एक दिव्यातिदिव्य ज्वारभाटा सा आता है। वही उमङ्ग सृष्टि संहार आदि को करके देखने और दिखाने के प्रति उसकी इच्छा बन जाती है। उसी इच्छा का निरूपण उपनिषदों के ऐसे ऐसे वाक्यों के द्वारा किया गया है जो यह कहते हैं कि—"आरम्भ में एकमात्र आत्मा ही अकेला था। उसने विमर्श किया कि मैं एक हूं, परन्तु बहुत बन जाऊं, मैं सृष्टि का अभिनय करूं" इत्यादि। परमेश्वर की ऐसी इच्छा से ही संसार प्रकट हो जाता है। संसार की बाह्य सृष्टि से पहले उस शुद्ध चैतन्य के भीतर

ही उसका आभास हो जाता है जिसकी सृष्टि करना वह चाहता है । वह शुद्ध चैतन्य ही परमशिव परमेश्वर है । जिन तत्त्वों से आगे लोक लोकान्तरों का निर्माण होता है उन तत्त्वों की शिव के भीतर ही होने वाली धीमी सी भासना करने वाली शक्ति को ज्ञानशक्ति कहते हैं और वहीं उस स्रष्टव्य जगत की स्फुट आभासना को करने वाली क्रियाशक्ति होती है । परमेश्वर की परा पारमेश्वरी शक्ति के ये पांच मुख्य रूप हैं जिन्हें चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया कहते हैं । इन पांचों के मिलेजुले परिपूर्ण स्वरूप को पराशक्ति कहते हैं । उस पराशक्ति के बलबूते पर ही परमेश्वर सृष्टि करता है, सृष्ट जगत को चिर-काल तक टिकाए रखता है और नियति के नियमों के अनुसार इसे सुचारु ढंग से चलाया करता है । जगत को आयु की समाप्ति पर इसे पुनः अपने भीतर विलीन कर देता है । इन तीन पारमेश्वरी कृत्यों को करते करते ही किन्हीं जीवों को घने से घने अज्ञान के बन्धनों में डालता हुआ उन्हें आध्यात्मिकता की दृष्टि से नीचे ही नीचे धकेलता रहता है और किन्ही जीवों पर अनुग्रह करता हुआ उन्हें मोक्षमार्ग की ओर प्रवृत्त करता हुआ तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में आगे आगे बढ़ाता जाता है । परमेश्वर की लीलामयी परमेश्वरता के ये पांच कृत्य कहलाते हैं जिनके नाम हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान और अनुग्रह ।

परमेश्वर इन पांच कृत्यों को अपने जिस सामर्थ्य से किया

करता है उसकी उस सामर्थ्य को उसकी शक्ति कहते हैं। परमेश्वर की ऊपरोक्त चित्, आनन्द, इच्छा आदि विशेष शक्तियां उसकी परमेश्वरता ही के भिन्न-भिन्न नाम और स्वरूप हैं। यदि वह ऊपरोक्त पांच पारमेश्वरी कृत्यों को किया करता है तो अपनी परमेश्वरता के बल से ही करता है। तो समझिए कि उस परमेश्वरता से ही वह परमेश्वर है। वह परमेश्वरता उसकी पारमेश्वरी शक्ति है और वह स्वयं उस शक्ति के अनन्त रूपों का एकघन स्वरूप है। उसकी परमेश्वरता के अंशों को लेकर के ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र क्रम से सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं तथा ईश्वर और सदाशिव उसी के अंशों के द्वारा ही पिधान और अनुग्रह करते रहते हैं। तभी तो शङ्कराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में कहा है कि "भगवान् शिव तभी सृष्टि आदि पांच कृत्यों को करने में समर्थ हैं जब उनके पास शक्ति है। यदि शक्ति उनके पास नहीं होती तो ज़रा भर स्पन्दन भी नहीं कर सकते, सृष्टि, स्थिति आदि को करने की तो बात ही नहीं।"

शिवः शक्त्या युक्तो यदि
भवति शक्तः प्रभवितुं ।
न चेदेवं देवो न खलु
कुशलः स्पन्दितुमपि ॥
(सौं. ल. १)

उन्होंने इसी बात को स्पष्ट करते हुए आगे यह भी कहा है कि "ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव यदि क्रम से सृष्टि, स्थिति, सहार, पिधान और अनुग्रह करते हैं, तो वे उस महाशक्तिरूपिणी परादेवी की भौहों के इशारे से मिलने वाले आदेशों के अनुसार ही ऐसा करते रहते हैं।"

जगत् सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते
तिरस्कुर्वन्नेतत् स्वमपि वपुरीशस्तिरयति ।
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिवस्—
तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ॥

(सौं. ल. २४)

धर्माचार्य ने पञ्चस्तवी में यहां तक कहा है कि "हे देवी, भगवान् शिव हाथी की ताज़ा चमड़ी पहनते हैं, मुर्दों की भस्म अपने शरीर पर मलते हैं, भीख मांगते फिरते हैं, और रहते हैं सदा भूतों और वेतालों के साथ परन्तु फिर भी उनके ये सभी दोष तभी गुण बन जाते हैं जब तू भगवती गिरिजा उनके साथ रहा करती है।"

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ ।

वेतालसंहृतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां विभर्ति गिरिजे तव साहचर्यात् ।।

(पं. स्त. ४-९)

शक्ति के प्रतिबिम्ब :

परमेश्वर की परमेश्वरता को जिस पहलू से देखिए उस पहलू से वह उसकी शक्ति ही है । तो परमेश्वर अपनी परिपूर्ण शक्ति के सामर्थ्य से सृष्टि आदि पांच कृत्यों को करता हुआ अनन्त वैचित्र्य से परिपूर्ण इस प्रपञ्च के रूप में सदा चमकता ही रहता है, यह उसका विश्वमय स्वरूप है । परन्तु इस तरह से चमकते रहने पर भी वह अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप से ज़रा भर भी विचलित न होता हुआ सदैव एकमात्र असीम और शुद्ध चैतन्य के रूप में ही ठहरा रहता है। उस रूप से कभी भी ज़रा भर भी च्युत नहीं होता है । सारा जगत् और इसके सारे सृष्टि आदि कृत्य परमेश्वर के शुद्ध चैतन्य के प्रकाश के भीतर उस तरह से प्रकट होते रहते हैं जिस तरह से एक स्वच्छ दर्पण में अनेकों नगर, ग्राम, वन आदि पदार्थ प्रतिबिम्ब रूप में प्रकट होते रहते हैं और फिर भी दर्पण की दर्पणता में, उसकी स्वच्छता और निर्मलता में कोई अन्तर नहीं आता, उल्टा इसी से उसकी दर्पणता और स्वच्छता के उच्च स्तर प्रमाणित हो जाते हैं । अन्तर केवल दो बातों में है—(१) दर्पण जड है । उसे पहले तो अपने आप का तथा

अपनी सत्ता का भी विमर्शन नहीं होता है कि 'मैं हूं', फिर उसे अपने भीतर प्रतिबिम्बित नगर, ग्राम आदि का भी विमर्शन नहीं हो सकता है कि ये हैं । (२) दर्पण को अपने भीतर प्रतिबिम्बों को प्रकट करने के लिए अपने सन्मुख ठहरे हुए नगर ग्राम आदि बाह्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती ही है क्योंकि वह स्वयं अपूर्ण है और परतन्त्र है । इसके विपरीत परमेश्वर को अपने आपका, अपनी सत्ता का तथा अपने परमेश्वरतात्मक स्वभाव का भी सतत विमर्शन होता रहता है, और साथ ही उसे अपने में प्रतिबिम्बित पदार्थों की भी प्रतीति होती है—"इदं" इस रूप में । यह एक बड़ा अन्तर है। दूसरा बड़ा अन्तर यह है कि परमेश्वर स्वतन्त्र है और परिपूर्ण है। उसे अपने भीतर जगत्-प्रतिबिम्ब को प्रकट करने के लिए किसी भी बाह्य बिम्ब को आवश्यकता नहीं पड़ती है। वह अपने चित्प्रकाश के भीतर अपनी ही शक्तियों के प्रतिबिम्बों को प्रकट करता रहता है । उसको अपनी ही शक्तियां बिम्ब बनती हैं और उनके प्रतिबिम्ब बनते हैं वे सारे तत्त्व जिनसे यह जगत् बना हुआ है । प्रतिबिम्ब बिम्ब के समान भी होता है और असमान भी होता है। समानता के अंश ही के कारण उसे पहचाना जाता है कि अमुक प्रति-बिम्ब अमुक बिम्ब की प्रतिच्छाया है । परन्तु यदि बिम्ब पूर्वाभिमुख ठहरा हो तो उसका प्रतिबिम्ब पश्चिमाभिमुख बना हुआ ही प्रकट हो जाता है । बिम्ब का दायां भाग प्रतिबिम्ब में बायां दीखता है और बायां दायां दीखता है ।

प्रति शब्द का अर्थ होता है प्रतीप या उल्टा । यही प्रतिबिम्ब का उल्टापन या प्रतीपता होती है । समस्त विश्व परमेश्वर के भीतर सर्वथा अहरूप और चिद्रूप ही बना रहता है और उसी रूप में वहां चमकता रहता है । अचिद्रूपता का और इदंरूपता का तो वहां नामोनिशान भी नहीं चमकता । सारा वृक्ष एक छोटे से बीज के भीतर बीज के ही रूप में सदा विद्यमान रहता है । दही, मलाई, पनीर, मक्खन, घी, खोया आदि सभी पदार्थ दूध में दूध बनकर ही विद्यमान रहते हैं । उसी तरह से परमेश्वर के भीतर सारे का सारा ही विश्व एकमात्र अहं ही के रूप में शुद्ध चैतन्यात्मक ही बना रहता है । वही विश्व जब प्रतिबिम्बवत् सृष्टि, स्थिति आदि पारमेश्वरी कृत्यों का विषय बनता हुआ प्रकट हो जाता है तो 'अहं' से विपरीत 'इदं' के रूप में और चित् से विपरीत अचित् के रूप में प्रकट हो जाता है। इस तरह से परमेश्वर सदैव अपने अद्वैत चित्स्वरूप में शुद्ध 'अहं' रूप से ठहरा ही रहता है। उसके इस रूप में कभी भी कोई भी अन्तर नहीं आता है। उसका इस तरह से सदा एकरूप अविचल भाव से चमकते रहना उसकी शिवता है और इस दृष्टि से ही शास्त्रों में उसे शिव कहा गया है। तात्पर्य यह है कि उस मूल तत्त्व को उसके स्थिर भाव की दृष्टि को लेकर के शिव कहा जाता है। उसके इस स्थिर भाव के भीतर ही वह सामर्थ्य विद्यमान रहती है जिसके बलबूते से वह अपने स्थिरभाव के प्रकाश के भीतर ही सृष्टि, स्थिति आदि पांच कृत्यों को और

उन कृत्यों का विषय बनने वाले इस सारे प्रपञ्च को प्रति-बिम्बकी तरह प्रकट करता रहता है। परमेश्वर के इसी सामर्थ्य को उसकी शक्ति कहा जाता है। यही उसकी परमेश्वरता है और इसी परमेश्वरता के बूते से वह परमेश्वर है। तो परमेश्वर के इस आभासमान चलभाव को दृष्टि में रखते हुए उसे शक्ति कहा जाता है। उसके स्थिरभाव के भीतर ही उसका यह चलभाव छिपकर सदैव विद्यमान रहता है। अतः शक्ति शिव के भीतर रहती है। शिव धर्मी है और शक्ति उसका धर्म है। दोनों वस्तुतः अभिन्न हैं एक ही पदार्थ के दो नाम हैं और उसके विषय में किए जाने वाले दो विमर्श हैं। उनका धर्म-धर्मि-भाव भी कल्पित ही है।

पुरुषभाव और स्त्रीभाव

शिव परमेश्वर का पुरुषभाव है और शक्ति उसका स्त्रीभाव है। संसार में जितनी भी सृष्टि देखने में आती है वह दो वर्गों में विभक्त है। एक है पुरुष वर्ग और दूसरा है स्त्रीवर्ग। इन दो वर्गों के बीज मूलतत्त्व के भीतर ही विद्यमान हैं और वे बीज हैं उसकी शिवता और उसकी शक्तिता। सांसारिक व्यवहार में स्त्री भोग्या बनती है और पुरुष उसका भोक्ता बनता है। यद्यपि इस प्रकार के पारस्परिक व्यापार में दोनों को ही एक दूसरे के आभिमुख्य से और संसर्ग से आनन्द के उपभोग का आस्वाद प्राप्त होता है और इस तरह से दोनों उस आनन्द के उपभोक्ता ही बनते हैं

फिर भी भोक्तृता पुरुष में ही अधिक अभिव्यक्त होती है और भोग्यता स्त्री में ही। फिर यह भी देखा जाता है कि स्त्री को प्रायः सेवा के द्वारा दूसरों को सुख देते हुए उन्हें सुख भोग सुलभ करने में ही स्वाभाविक दिलचस्पी हुआ करती है और पुरुष को दूसरों के द्वारा सुलभ बनाए गए सुखों के भोग ही प्रायः पसन्द आते हैं। इस तरह से भी भोक्तृत्व अधिकतर पुरुषों में ही और भोग्यता स्त्रियों में ही विकास को प्राप्त होती है। इस विषय में यह बात भी अवश्य ध्यान में रखने के योग्य है कि पुरुष में भी अंशतः भोग्यता अभि-व्यक्त होती है और स्त्री में भी अंशतः भोक्तृता। इस बात का मूल कारण यह है कि मूलतः शिव और शक्ति एक ही परमेश्वर रूपी परब्रह्म के दो पहलू हैं। जो ही परमेश्वर शिवरूपतया अपनी परमेश्वरतारूपिणी शक्ति के ऐश्वर्यमय उपभोग का भोक्ता है, वही स्वयं शक्तिरूपतया भोग्य भी बनता है। शिव में भी शक्तिभाव रहता है क्योंकि शक्ति ही उसकी शिवता है, बिना शक्ति के उसे शिव कहा ही नहीं जा सकता। फिर शक्ति स्वयं शिवरूपतया देदीप्यमान है। शिव को छोड़कर वह ठहरे ही कहां। अतः वह शिव से अभिन्न होती हुई शिव ही है। तो शिव शक्ति है और शक्ति शिव है। शिव में शक्तिता है और शक्ति में शिवता है। हां जब साधक को अपने शिवभाव की स्फुट अभिव्यक्ति हो जाती है तो शक्तिभाव उस शिवभाव के भीतर अभेद-भाव से छिपा सा रहता है। फिर जब उसे अपने शक्तिभाव

की ही स्फुट अभिव्यक्ति होती है तो उसमें भी शिवभाव गौण बनकर विद्यमान ही रहता है। शिवभाव की उन्मग्नता में शक्तिभाव निमग्न होकर रहता है और शक्तिभाव की उन्मग्नता में शिवभाव निमग्न होकर रहता है। इन दो भावों की उन्मग्नता और निमग्नता की दृष्टि से ही एक हो परमतत्त्व को शिव और शक्ति ये दो नाम दिये गए हैं।

शक्ति परमेश्वर की परमेश्वरता है। उस परमेश्वरता के अद्भुत चमत्कारों के उपभोग ही के लिए शिव अपनी शक्ति को अपनी विमर्शमयी दृष्टि के सामने अपने अभिमुख ठहरा कर उसे विमर्श द्वारा निहारता है। तभी उसे उस स्वस्वभावभूत परमेश्वरता के समस्त चमत्कारों का आस्वाद आता है। आगे वह जब अपनी उस परमेश्वरता में अच्छी प्रकार से आविष्ट हो जाता है तो मानो परमेश्वर और उसकी परमेश्वरता का परस्पर अभिमुख समावेश हो जाता है जिसे शैव शास्त्रों में परस्पर संघट्ट कहा गया है। उसी संघटट से विश्वसृष्टि होती है और उसी से परमेश्वर को अपनी परमेश्वरता का पूरा उपभोग प्राप्त होता है। इस तरह से शिव उस मूल तत्त्व का पुरुषभाव है और शक्ति उसका स्त्रीभाव है, शिव भोक्ता है और शक्ति भोग्या है क्योंकि अपनी शक्ति के अभिमुख विमर्शन से ही शिव को परम आनन्द आता है। यद्यपि भोक्ता, भोग्य, भोग ऐसे शब्दों का प्रयोग शिव और शक्ति के विषय में किया नहीं जा सकता है; ऐसे शब्दों और ऐसे विचारों की समुचित

भूमि माया का क्षेत्र ही है, परमेश्वरात्मक भक्ति का क्षेत्र नहीं; फिर भी समझाने के लिए ऐसा कहना पड़ता है। इन्हीं दो भावों के प्रतिबिम्ब जीव निकाय पर पड़े हुए जहां तहां दीखते हैं। इसी कारण से सारे की सारी जीवसृष्टि इन दो वर्गों में बंटी हुई है। जड सृष्टि में भी ये दो भाव थोड़े-थोड़े अभिव्यक्त होते हैं। तभी तो इलेक्ट्रोन और प्रोटोन परस्पर आसक्त होकर ही इस जड जगत का जन्म देते हैं। भोक्तृभाव की प्रधानता में पुरुषत्व का और भोग्यभाव की प्रधानता में स्त्रीत्व का व्यवहार संसार में अनादि काल से चलता आया है। यह एक सर्वव्यापक सामान्य नियम है। इस सामान्य नियम के अपवादों का होना भी स्वाभाविक ही है। तदनुसार किसी स्त्री में भी पुरुषोचित स्वभाव प्रकट हो सकता है और किसी पुरुष में भी स्त्रीत्वस्वभाव की प्रधानता हो सकती है।

दैवी प्रशासन के भीतर काम करने वाले पुरुषभाव-प्रधान अधिकारी देव या देवता कहलाते हैं और स्त्रीभाव प्रधान अधिकारी देवियां कहलाती हैं। प्रत्येक देव के साथ उसकी देवी भी होती है, जिसके सहयोग से ही वह अपने अधिकार को निभाया करता है। पारमेश्वरी सृष्टि में भी शक्तिभाव की ही प्रधानता है। यदि परमेश्वर में वह भाव प्रधानतया उन्मग्न न हो जाता तो कोई भी सृष्टि, संहार आदि पारमेश्वरी कृत्य हुआ ही नहीं होता। संसार के व्यवहार में भी सृष्टिक्रिया का विशेष भार स्त्री ही उठाया

करती है। पुरुष एक निमित्तमात्र सा ही बना करता है। इसीलिए शैव शास्त्रों में भी समस्त उपासना आदि व्यापारों में शक्तिभाव को ही प्रधानता दी गई है। मालिनीविजयोत्तरतन्त्र में कहा गया है कि "साधक को चाहिए कि मन्त्र का सम्बन्ध शाक्तितत्त्व के साथ ही जोड़े। जडात्मक नर-तत्त्व के साथ या विश्वोत्तीर्ण शिव-तत्त्व के साथ न जोड़े, क्योंकि जडात्मक नर-तत्त्व के साथ जोड़ने से साधक भी जड ही बन जाएगा और परतत्त्व के साथ जोड़ने से उसे कोई फल नहीं मिलेगा। हां शक्तितत्त्व के साथ जोड़ा गया मन्त्र सभी कर्मों के वाञ्छित फल दे सकता है।"

न पुम्सि न परे तत्त्वे शक्तौ मन्त्रं नियोजयेत् ।
पुंस्तत्त्वे जडतां याति परे तत्त्वे तु निष्फलः ॥
शक्तौ मन्त्रो नियुक्तस्तु सर्वकर्मफलप्रदः ।

(मा० वि० तं० 18-42)

पुरुषभावप्रधान देवगण उपासकों के साथ पिता पुत्र का जैसा व्यवहार करते हैं जिससे साधकों का भला होता है और अनुशासन भी बना रहता है। वे अनुशासन भङ्ग को सहन नहीं करते। स्त्रीभाव प्रधान देवियों का व्यवहार स्नेहमूर्ति माताओं का जैसा होता है। वह अनुशासन को या उसके भङ्ग को अधिक महत्त्व नहीं देती हैं। उनका व्यवहार विशेषतया उदार होता है। मातृहृदय वाली देवियां मान-

वोचित कमज़ोरियों पर रुष्ट नहीं होती हैं और यदि साधक के हृदय में भोगवासना हो तो उसे अभीष्ट भोगों को भी दे ही देती हैं। शिव यदि कभी अपने उपासक को कोई उत्कृष्ट भोग दे भी दें तो उस भोगस्थान से भी उसे मोक्षमार्ग की ही ओर प्रेरणा करते हैं, चाहे वह मार्ग कष्टों से भी भरा क्यों न हो। परन्तु जगन्माता शक्ति का स्वभाव विशेष स्नेह से भरा और करुणाशील है। इसीलिए संसार में उसी की विशेष उपासना अनादि युगों से ही चलती आ रही है। संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों के अवशेषों में इसीलिए मातृदेवी की विशेष उपासना के प्रमाण मिलते हैं। भगवती जगन्माता अपने भक्त को वही फल देती है जिसकी अभिलाषा उसके हृदय में प्रबल हो : उनका दृष्टिकोण ऐसा है कि भक्तों की वासनाओं को दबाने की अपेक्षा उन्हें सफल बनाते हुए ही उन्हें आग बढ़ाना हितकर है। इसीलिए सारे भारत में मातृपूजा ही अधिक लोकप्रिय है। वृन्दावन में भी राधा की पूजा को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है।

देवसृष्टि :

पशु, पक्षी, मानव आदि की सृष्टि तो स्थूल सृष्टि है। इससे ऊंचे दर्जे की सृष्टि देवगणों की सृष्टि है। उस सृष्टि के प्राणी पांचभौतिक स्थूल शरीरों में नहीं रहते हैं। उनके शरीर अतीव सूक्ष्मतर सामर्थ्यों के समूहों से बने होते हैं जो सामर्थ्य समूह एक एक व्यक्तिगत अहंरूप चेतना को घेरे

रखते हैं और वह वैयक्तिक चेतना individual consciousness इन सामर्थ्यों के द्वारा सूक्ष्मतर विषयों का उपभोग प्राप्त करती रहती है। वे प्राणी भी उन सूक्ष्म शरीरों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अनुकूल कारोबार करते रहते हैं। हम स्थूल प्राणी जो व्यवहार अपनी स्वप्न अवस्था में करते रहते हैं : वह व्यवहार हम उन सूक्ष्म शरीरों ही के द्वारा करते हैं। परन्तु हमारी वह स्वप्न दशा स्थिर नहीं रहती है। हम पुनः जाग्रत् अवस्था में आ जाते है। उस समय हमारा वह सारा स्वप्न व्यवहार असत्य हो जाता है, वह ख्याली पुलाव बन जाता है। परन्तु देवगण उस स्वप्न-लोक के ही प्राणी होते हैं जिसमें स्वप्नव्यवहार ही प्राकृतिक व्यवहार होता है। तात्पर्य यह है कि उनके वे स्वप्नलोक स्थिरलोक होते हैं; वहां के सभी प्राणी सूक्ष्म शरीरों ही के द्वारा सूक्ष्म विषयों के साथ व्यवहार करते हैं। उनका वह स्वप्नात्मक जीवन ही स्वाभाविक जीवन होता है जबकि हमारा स्वाभाविक जीवन यह जाग्रत् जीवन होता है और इसमें श्रम आदि कारणों से अस्थाई स्वप्न अवस्थाएं आती भी रहती हैं और जाती भी रहती हैं जबकि यह जाग्रत् का जीवन काफी देर तक स्थिर रहता है। स्वप्न सृष्टि के उन देवलोकों के प्राणी विविध प्रकार के शरीरों वाले होते हैं। किन्हीं के अनेक बाहुओं और अनेक सिरों वाले शरीर होते हैं। उन देवलोकों के निवासी देवता भी होते हैं और देवियाँ भी। देवताओं का स्वभाव पिता का जैसा होता है और देवियों का माता का जैसा। इस लिए देवियों की आराधना करने पर

मानवों के काम जल्दी बन जाते हैं, क्योंकि उनका मातृहृदय शीघ्र ही पसीज जाता है। प्रायः प्रत्येक देवी का अपना अपना पति कोई देवता होता है और प्रत्येक देवता की अपनी-अपनी शक्ति कोई देवी उसकी पत्नी होती है। परमेश्वर के पुरुषभाव और स्त्रीभाव का प्रतिबिम्बन जैसे मर्त्यलोकों में होता है वैसे ही देवलोकों में भो हुआ करता है। उन देवलोकों के भी अनेकों स्तर हैं। ऊपर ऊपर के लोकों के निवासी देवगण निचले निचले लोकों के निवासी देवगणों की अपेक्षा ऊचे ऊचे अधिकारों और अधिक अधिक ऐश्वर्यों वाले होते हैं।

अनेकों देवगण सूक्ष्म शरीरों में रहते हुए और इस लोक में ही निवास करते हुए अपने अपने अधिकारों के अनुसार इस मर्त्यलोक पर प्रशासन को चलाते रहते हैं। इस स्थूल सृष्टि के व्यापारों को मनुष्य चलाते हैं। आपाततः मनुष्य ही इस लोक के प्रशासन के अधिकारो होते हैं। परन्तु वस्तुतः मनुष्यों को प्रेरणा देने वाले और उनके लिए विशेष परिस्थितियों को बनाने वाले देवगण होते हैं। उन्हीं की अन्तः प्रेरणाओं के अनुसार सांसारिक घटनाएं घटती हैं। मानव-लोकों में निवास करने वाले उन देवगणों में अति निम्न स्तर के अधिकारी ग्रामदेवता हुआ करते हैं। उनसे बड़े अधिकारो क्षेत्राधिपति और राष्ट्राधिपति भैरव होते हैं। मानव संसार में रहने वाले इन देवगणों से ऊपर अन्तरिक्षलोक में निवास करने वाले गन्धर्व, किन्नर और अप्सरा आदि देवयोनियों के

प्राणी होते हैं। इनका काफी सम्बन्ध इस मानवलोक के साथ भी रहता है। वैदिक देवताओं में से मरुद्गणों का स्थान अन्तरिक्षलोक है। भूलोक और अन्तरिक्षलोक के बीच में ही गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा आदि योनियों के देवगण रहते हैं। उनसे ऊचे दर्जे के देवताओं में यक्ष और भूत गिने जाते हैं। उनसे भी ऊंचे स्थानों के देवता होते हैं विद्याधर और सिद्ध। यहां तक के सभी देवगण इस भूलोक पर अपने-अपने अधिकारों के ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं। अन्तरिक्ष लोक के अधिकारी मरुद्गणों के भी अनेकों अवान्तर वर्ग हैं जो उत्तरोत्तर ऊंचे ऊंचे अधिकारों के होते हैं। देवताओं के इन सभी वर्गों से भी ऊंचे स्तर के अधिकारी आठ दिक्पाल होते हैं। ये ही तीनों लोकों के प्रशासन को चलाते हैं। इनका अपना रहने का स्थान स्वर्लोक है। स्वर्लोक का प्रधान अधिपति इन्द्र देवता है। स्वर्लोक से ऊपर महः, जनः आदि लोकों में विविध स्तर के उत्कृष्ट सिद्धों और भृगवों का प्रशासन चलता है। तपः लोक छठा लोक है। इसमें कश्यप आदि प्रजापति निवास करते हैं। उससे ऊपर सत्यलोक है जिसका ऊपरी भाग ब्रह्मलोक है। उस ब्रह्मलोक में वेदों के अधिष्ठातृ देवता रहते हैं। उसी लोक के सर्वोपरि भाग में ब्रह्माजी निवास करते हैं और निचले लोकों पर शासन भी करते हैं। उससे ऊपर भगवान् विष्णु का वैकुण्ठ धाम है। उससे भी ऊपर इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि और इसके संहार को करने वाले प्रधान अधिकारी भगवान् रुद्र का लोक है। यहां

अनेकों रुद्र और अनेकों रुद्राणियां हैं जो निचले लोकों के प्रशासन को चलाते हैं। सात लोकों पर शासन करने वाले सात मुख्य रुद्र हैं। उनके नाम हैं—शर्व, रुद्र, भीम, भव, उग्र, महादेव और ईशान। ब्रह्मण्ड के नीचे दण्डपाणि नामक रुद्र का शासन है। ब्रह्माण्ड के बाहिर दस दिशाओं में दस दस रुद्र रहते हैं जो इस ब्रह्माण्ड को बाहिर से ठहराए रखते हैं। इन १०×१०=१०० रुद्रों के ग्यारह अधिपति हैं। उन सारे एक सौ रुद्रों के नाम स्वच्छन्दतन्त्र के दसवें पटल में ६२२ से ६४४ तक के श्लोकों में गिनाए गए हैं। एकादश रुद्रों के नाम और अधिकार स्वच्छन्दतन्त्र में दसवें पटल में ३४६वें श्लोक से लेकर ६५८वें श्लोक तक बताए गए हैं। इन ग्यारह रुद्रों में सब से ऊंचा स्थान वीरभद्र नामक रुद्र का है। इस इस प्रकार के अनेकों उत्तमोत्तम अधिकारी रुद्रों के लोकों के ऊपर भगवान् उमापतिनाथ का स्थान है। इसी उमापति-नाथ की जो परमाशक्ति भगवती उमा है उसी का एक विशेष रूप वैंणवी देवी है। वैष्णवी देवी के अधिकार के स्तर पर प्रकाश डालने के लिए भूलोक से लेकर के उमापतिपुर नामक लोक तक के प्रमुख अधिकारियों के विषय में और उनके अधिकारों के स्तरों के विषय में संक्षेप से ऊपरोक्त रूक्ष सा लगने वाला प्रकरण बताया गया। अब आगे उमापति का विशेष परिचय देते हुए उसकी वैष्णवी शक्ति का परिचय दिया जाएगा।

शुद्ध सृष्टि :

परमेश्वर ही सर्वत्र सृष्टि संहार आदि पारमेश्वरी कृत्यों का कर्ता है। परन्तु वह इन कृत्यों को शुद्ध सृष्टि के भीतर ही स्वयं करता है। उसके फलस्वरूप मायातत्त्व से ऊपर सभी शुद्ध तत्त्वों के भीतर वह स्वयमेव साक्षात् सृष्टि संहार आदि करता हुआ और शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या इन पांच तत्त्वों को प्रतिबिम्ब न्याय से अपने शुद्ध चित्-प्रकाश के भीतर प्रकट करता हुआ इन तत्त्वों में रहने वाले सभी शुद्ध प्राणियों के रुप में स्वयमेव प्रकट हो जाता है। फिर सदाशिवतत्त्व और ईश्वरतत्त्व के भीतर रहने वाले मन्त्रमहेश्वर और मन्त्रेश्वर नामक प्राणियों के लिए उपास्य देव के रूप में और प्रशासक के रुप में उन दो तत्त्वों में अवतरण करता हुआ वहां भगवान् सदाशिव और भगवान् ईश्वर के रूप में प्रकट हो जाता है। यह सभी शुद्धतत्त्व भेदाभेद दशा के तत्त्व हैं। भेदमयी सृष्टि के प्रति उन्मुख हुआ परमेश्वर अपनी शक्ति के बहिर्मुख उन्मेष के द्वारा पहले अपने अभेद के भीतर ही भेद को भी प्रकट करता है। उसके फलस्वरुप शुद्ध स्वात्मस्वरुप चैतन्य के प्रकाश के भीतर भेदात्मक प्रमेय भी प्रकट हो जाता है, परन्तु वह प्रमेय अभी प्रमाता के साथ अभिन्न होता हुआ ही चमकता है। प्रमातृता का विमर्श एकमात्र "अहं" इस रुप में ही होता है। परन्तु प्रमेयता "इदं" इस रुप में विमर्श क्रिया का विषय बनती है।

शुद्ध "अहं" के भीतर सृष्टि-संहार आदि व्यवहार प्रकट ही नहीं हो सकते। वहां वे बोजरूपतया विलीन होकर रहते हैं। उस "अहं" को ही उसके शुद्ध स्थिर भाव में शिव कहते हैं और उसी में जो वह चलभाव है, जिस चलभाव के प्रभाव से वह सृष्टि संहार आदि के प्रदर्शन के प्रति उन्मुख होता रहता है, उस चलभाव में उसी "अहं" को शक्ति कहते हैं। यदि उस शिवभाव के भीतर ऐसा शक्तिभाव विद्यमान नहीं होता तो सृष्टि होती ही नहीं। उसके न होने पर परमेश्वर को परमेश्वरता ज़रा भर भी अभिव्यक्त नहीं होती। वही एक सदा अकेला ही विद्यमान रहता। वह भी रहता या नहीं रहता, इस बात की न तो किसी शङ्का का ही उदय होता और न समाध न ही होता। उसके चलभाव के बहिर्मुखी स्पन्दन से भेदमयी सृष्टि के प्रकट होने पर ही सब कुछ होता है। अतः परमेश्वर का शक्तिभाव ही उसकी परमेश्वरता को अभिव्यक्त करता है। उस शक्तिभाव के विना उसका शिवभाव अधिक से अधिक शून्य गगन की जैसी शान्त स्थिति में निष्क्रिय और अचेतन जैसा पड़ा रहता। शक्ति-भाव के प्रथम स्पन्दन से परमेश्वर के शुद्ध प्रकाश के भीतर प्रमातृभाव रूप "अहं" और प्रमेयभावरूप 'इदं" इन दो अशों का आविर्भाव हो जाता है। परन्तु दोनों में परस्पर अभेदभाव का भी प्रकाशन होता हो रहता है। तब चेतना या तो इस तरह से विमर्शन करती है—कि "अहम् इदम" अर्थात् मैं यह प्रमेय हूं; अथवा वहां ऐसा विमर्शन होता है कि

"इदम अहम्" । अर्थात् यह प्रमेय अंश मैं हूं । पहले प्रकार के विमर्श में अहं अंश प्रधानतया चमकता है, अतः उससे ईश्वरता की वहिर्मुख अभिव्यञ्जना विशेषतया स्फुट रूप से नहीं होती है । इस दशा को सदाशिव तत्त्व कहते हैं । इस तत्त्व के प्रशासक भगवान सदाशिव और यहां के प्राणी मन्त्र-महेश्वर प्रायः अपने अभेद के आनन्दमय चमत्कार में ही मस्त रहते हैं; ईश्वरता के बहिर्मुख विकास में प्रायः विशेष रुचि नही रखते । उनको प्रमेयता का अतीव धीमा सा आभास होता रहता है । परन्तु "इदम्अहम्" इस प्रकार के विमर्श में इदंरूप प्रमेयता का ही आभास प्रधानतया होता है और अहंरूप प्रमातृता उसका विशेषण जैसी बनी रहती है । इदन्ता उद्देश बनती है और अहन्ता की स्थिति विधेय के रूप में रहती है । उद्देश वाक्यार्थ के सिद्ध अंश को कहते हैं और विधेय उसके साध्य अंश को । तो प्रमेयता की प्रधानतया अभिव्यक्ति के होते हुए इसी तत्त्व से वहिर्मुखी सृष्टि की क्रिया स्फुटतया और पूरे वेग से चल सकती है । इसीलिए इसी तत्त्व के प्रकासक को ईश्वर भट्टारक कहते हैं । इससे ऊपर तीन तत्त्वों के प्रशासकों को ईश्वर होते हुए भी ईश्वर नहीं कहा जाता है, क्योंकि ईश्वरता की स्फुट अभिव्यक्ति इस चतुर्थ तत्त्व में ही होती है; ऊपर के तीन तत्त्वों में नहीं । पांचवा तत्त्व भेदाभेदमय दृष्टिकोण होता है, जिसे शुद्धविद्या कहते हैं । यहां तक की सृष्टि शुद्ध सृष्टि कहलाती है ।

मायीय-सृष्टि

स्वयं परमेश्वर जहां पांच शुद्ध तत्त्वों की सृष्टि स्वयं करते हैं, वहीं एक अशुद्ध तत्त्व को भी प्रतिबिम्बन्याय से प्रकट करते हैं। वह अशुद्ध तत्त्व है माया तत्त्व । परमेश्वर की स्वातन्त्र्यशक्ति ही माया के रुप में प्रतिबिम्बवत् प्रकट हो जाती है । इस माया की मुख्य विशेषताएं तीन हैं। एक तो यह एक परदे का सा काम देती है जिससे परमेश्वर अपने शुद्ध चिन्मय स्वरूप को छिपाकर शरीर आदि जड पदार्थों को ही अपना आप समझने लग जाते हैं। इसकी दूसरी विशेषता है स्फुट भेदमयी दृष्टि जिससे प्रमातारूप "अहं" अपने को प्रमेयरूप "इदं" से सर्वथा भिन्न समझ बैठता है। इस विशेषता के कारण उसे मायीयमल नाम दिया गया है । माया की तीसरी विशेषता यह है कि वह आगे की सारी जड सृष्टि का उपादान कारण बनती है। उसी से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है। ये तीन विशेषताएं इसकी मुख्य विशेषताएं हैं। इसकी चौथी विशेषता वह है जिसके प्रभाव से शुद्ध विद्या के स्तर पर रहने वाले कोई कोई शुद्ध प्रमाता भी प्रमेय को अपने से भिन्न समझ बैठते हैं। उनमें शुद्ध चेतना ही "अहं" के रुप में चमकती है और अपने आप की अपरिमित ईश्वरता का आभास भी उनको होता रहता है, परन्तु फिर भी वे भेददृष्टि को ही अपनाते हुए अभेददृष्टि को खो देते है । माया की इस चौथी विशेषता को माया तत्त्व के भीतर न

गिनते हुए इसे शुद्ध विद्या ही के भीतर गिना जाता है । इस निचले स्तर की शुद्धविद्या को महामाया कहते हैं। इस स्तर पर ठहरे हुए अधिकारी बहिर्मुखी सृष्टि को विशेष स्फुटता से विकास में ला सकते हैं। अतः ईश्वरभट्टारक अवतार के रूप में इस महामाया में उतरकर भगवान् अनन्तनाथ के रूप में प्रकट हो जाते हैं। महामाया के क्षेत्र में रहने वाले प्राणी विद्येश्वर या मन्त्र प्राणी कहलाते है। उनके उपास्य देव और प्रशासक अधिकारी भगवान् अनन्तनाथ हैं । मायाशक्ति का यह रूप और ये महामाया के मन्त्रप्राणो भी उपरोक्त शुद्ध सृष्टि के ही भीतर गिने जाते हैं । अशुद्ध सृष्टि में एक तो माया तत्त्व और दूसरे उस तत्त्व से उत्पन्न होने वाले अन्य सभी तत्त्व तथा उनमें रहने वाले प्राणो ही गिने जाते हैं । भगवान् अनन्तनाथ ही माया के भीतर प्रक्षोभ पैदा करके उसे पांच कंचुकों के रुप में प्रकट करते हैं। कञ्चुक चोले को कहते हैं। तो इन पांच चोलों के भीतर परमेश्वर की परमेश्वरता जब छिप जाती है तो वह अशुद्ध प्रमाता के रूप में अर्थात् पुरुष तत्त्व के रूप में प्रकट होकर परिमित तथा जड पदार्थों को ही अपना आप समझने लग जाता है। पांच कंचुक होते हैं—(१) कला अर्थात् संकोच को प्राप्त हुई क्रियाशक्ति, (२) विद्या-संकुचित ज्ञान सामर्थ्य, (३) राग-किसी किसी विशेष प्रमेय हो के प्रति जानने और करने में रुचि, (४) काल—अकालकलित असीम आत्मचैतन्य पर तथा सभो प्रमेयों पर कालिक व्यवहार का आरोप कालतत्त्व है ।

इससे भतता, भविष्यता और वर्तमानता के भाव पुरुष अर्थात् जीव के समस्त व्यापारों के और प्रमेय जगत के स्वभाव जैसे बन जाते हैं। जीव का कोई भी ज्ञान या क्रिया का व्यापार इन तीन भावों में से किसी एक भाव को अवश्य अपनाते हुए ही प्रकट होता है। अपने क्रमरहित स्वरूप पर इस तरह की क्रमिकता का आरोप काल तत्त्व है जो प्रमाता के स्वरूप को ही संकुचित बना डालता है। (५) पांचवा कंचुक नियतितत्त्व है। सारे कार्यकारणभाव के नियम और कर्मफल भोग के नियम नियति के अङ्ग हैं। यह नियति पुरुष के स्वातन्त्र्य को छीनकर तथा उसके ज्ञानसामर्थ्य और क्रिया सामर्थ्य को अत्यन्त संकुचित करके उसे कर्मफल भोग के नियमों के अनुसार जन्ममरण के चक्करों में घुमाती रहती है। माया और उसके विस्ताररूपो ये कञ्चुक प्रमातृरूप चैतन्य को घेर करके उसे अत्यन्त क्षुद्रजीव की दशा पर जब पहुंचा देते हैं तो वह अणु अर्थात् अत्यन्त संकोच पर पहुंचा हुआ प्रमाता बन जाता है जिसे पुरुष तत्त्व कहते हैं। इस संकुचित 'अहं' का प्रमेय अंशरूपी 'इदं' मूलप्रकृति तत्त्व कहलाता है। यहां तक के इन सात मलिन तथा जड़ मायीय तत्त्वों की सृष्टि माया में से भगवान् अनन्तनाथ करते हैं।

प्राकृतिक सृष्टि :

यह दृश्य संसार सत्त्वगण, रजोगुण और तमोगुण के

अनेकों प्रकारों के वैषम्यात्मक मिश्रण से बना हुआ है। इसके मूल रूप को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति वह तत्त्व है जिसमें आकाश आदि पांच महाभूत, शब्द आदि पांच इन्द्रिय विषय, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन, अहंकार और बुद्धि समस्त तेईस तत्त्व सृष्टि से पहले और संहार के अनन्तर एकरूपतया समाए रहते हैं। उस अवस्था में तीनों गुण सर्वथा समान परिमाण से समान प्रधानता से मिलकर रहते हैं। उसे गुणसाम्य की अवस्था कहते हैं और इस संसार को गुणवैषम्य की अवस्था कहा जाता है। जब तक मूल प्रकृति के भीतर गुणों में वैषम्य नहीं आता तब तक तेईस जड़ तत्त्वों में से किसी एक की भी अभिव्यक्ति नहीं होती। जिस तरह से पौधे के पत्र, डंठल सौर जड़ें तीनों मिलकर और एकरूप बनकर बीज के भीतर बीज के ही रूप में विद्यमान रहते हैं, उसी तरह से सभी अन्तःकरण, सभी ज्ञानेन्द्रियां और सभी कर्मेन्द्रियां तथा सभी इन्द्रिय विषय और मनोभाव मूल प्रकृति के भीतर एकरूपतया विद्यमान रहते हैं। तब तक सब कुछ उसी के भीतर समाकर रहता है जब तक वह प्रक्षुब्ध नहीं होती और उसमें गुणवैषम्य नहीं आता। प्रकृति जड है अतः उसे गुणवैषम्य के प्रति कभी स्वयमेव प्रक्षोभ पैदा नहीं हो सकता। उसमें प्रक्षोभ लाने के लिए और उसमें से तेईस तत्त्वों की सृष्टि के लिए भगवान् ईश्वर भट्टारक यहां भी अवतार के रूप में उतर आते हैं। उस रूप में उन्हें भगवान्

श्रीकण्ठनाथ कहते हैं । ये श्रीकण्ठनाथ ही इन तेईस प्राकृतिक तत्त्वों के सृष्टि संहार को करते है । ये ही इस त्रिगुणात्मक सृष्टि के मुख्य प्रशासक हैं ।

उमापति शिव :

भगवान् श्रीकण्ठनाथ इस गुणतत्त्व के भीतर दो रूपों में प्रकट होते हैं। उनमें से एक ज्ञानप्रधान होता है और दूसरा क्रियाप्रधान। एक में ज्ञातृत्व प्रधानतया विकास को प्राप्त होता है और दूसरे में कर्तृत्व। एक प्रधानतया निग्रह लीला को चलाते रहते हैं और दूसरे सातों लोकों पर प्रशासन के कार्य को निभाते हैं । उन दो रूपों में से एक तो स्वयं भगवान् श्रीकण्ठनाथ हैं दूसरा उनका ही विशेष कर्मठ रूप है जिसमें उन्हें उमापतिनाथ कहते हैं । उनके विषय में तन्त्रालोक में कहा गया है, "देवी के माया नामक पुर से ऊपर उमापति का पुर विद्यमान है जिसे मातृकाएं घेर कर रहती हैं। श्रीकण्ठनाथ ही एक और रूप में उमापतिनाथ कहलाते हैं" :—

उमापतेः पुरं पश्चान्मातृभिः परिवारितम् ।
श्रीकण्ठ एव परया मूर्त्योमापतिरुच्यते ।। (तं आ ८.२४१)

ये उमापतिनाथ ही वे शिव हैं जो कैलास में निवास करते हैं, जिनका चरित महाभारत में, पुराणों में और काव्यों में वर्णित है, जिनकी उपासना लिङ्गमूर्ति के रूप में

सर्वत्र की जाती है और जो देवगणों, असुरगणों, मानवों और राक्षसो आदि पर भी समान दृष्टि रखते हुए उन सभी को उपासना के उचित फल देते आए हैं और जो ब्रह्माण्ड की सुरक्षा के लिए विषपान जैसे अशक्य कार्यों को भी करुणावश करते आए हैं। उमापतिनाथ ही एक और दिव्य शरीर में पञ्चमुख स्वच्छन्दनाथ के रूप में प्रकट होकर शैवागमों का उपदेश कर गए हैं। इस तरह से इस त्रिगुणात्मक जगत के सृष्टि-संहार आदि और बन्धमोक्ष आदि पारमेश्वरी व्यापारों को पूरी तरह से क्रियात्मकतया चलाने वाले ईश्वर ये उमापतिनाथ नामक शिव ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तथा इन्द्र, वरुण, यम आदि सभी अधिकारी देवगण इन्हीं के अधीन काम करते हुए इन्हीं के आदेशों के अनुसार इस ब्रह्माण्ड के प्रशासन कार्य को चलाते रहते हैं। तो समझिए कि परमेश्वर की परमेश्वरता के व्यवहारों के क्रियात्मक पक्ष को पूरी तरह से सफल बनाते हुए उसे चलाने वाले भगवान् ये उमापतिनाथ शिव ही हैं और इन्हीं के भीतर परमेश्वरता का पूरा विकास हुआ है तथा वह परमेश्वरता इन्हीं के भीतर रहती हुई पूरी तरह से सफल बनती आई है। अतः क्रियात्मक रूप में ये उमापति नामक शिव ही परमेश्वर हैं।

शक्ति के अनन्तरूप :

पारमेश्वरी पराशक्ति एक है, परन्तु इस संसार लोला में

सृष्टि, संहार आदि और निग्रह-अनुग्रह आदि के अनेकों व्यापारों को विविध वैचित्र्य से चलाने के लिए वह इतने असख्य दिव्य शरीरों को लेकर के संसार में प्रकट होती रहती है कि इन शरीरों को पूरी तरह से गिना ही नहीं जा सकता है। देवी की इस प्रकार की पारमेश्वरी विभूति को दृष्टि में रखते हुए ही भक्तशिरोमणि श्री धर्माचार्य ने कविता के माध्यम से पञ्चस्तवी के एक पद्य के द्वारा उनसे यह पूछा है, "हे देवी गिरिजा ! जब आप अपने स्वरूप का सङ्कोच करती हैं, तब न ही आपका कोई विशेष नाम ही और न कोई विशेष रूप ही प्रकट होता है। तो उस दशा में नामों और रूपों से रहित होती हुई आप क्या किसी भी वाणी का या किसी भी तर्क का विषय बन भी सकती हैं ?" तात्पर्य यह है कि उस दशा में न तो वाणी से और न ही किसी तर्क से आपका विवेचन किया जा सकता है, न आपके नामरूप का कोई विमर्शन या चिन्तन ही किया जा सकता है :—

सङ्कोचमृच्छसि यदा गिरिजे तदानीं।
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा ॥ (पं. स्त. ४-२२)

यहां "त्वमसि" इस शब्दभाग में 'असि' अंश को काकु ध्वनि से बोला गया है । तब यह शब्द 'असि' प्रश्नार्थक बना है।

फिर कवि ने देवी से यह भी पूछा है, "हे देवी ! जब

आप इस विश्वात्मक विकास को प्राप्त हो जाती हैं, तब आपके असंख्य नामों और रूपों की गणना भी की जा सकती है क्या ?" तात्पर्य यह है कि विश्वविकास की अवस्था में देवी के अनन्त और असंख्य नामरूपों को तो गिना ही नहीं जा सकता है :—

यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं।
त्वन्नामरूपगणना: सुकरीभवन्ति ॥ (पं. स्त ४-२२)

यहां भी 'भवन्ति' इस क्रियापद को काकु ध्वनि से बोला गया है और तब यह पद प्रश्नार्थक बना है। दोनों जगह व्यंग्यार्थ ऊपरोक्त निषेधात्मक ही है।

पारमेश्वरी पराशक्ति के उन अनन्तरूपों में से अनेकों की प्रतिष्ठा भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर हुई है। जिन-जिन भी देवियों की उपासना उन उन स्थानों पर होती है वे सभी देवियां एक ही पारमेश्वरी पराशक्ति के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। इस तरह से पारमेश्वरी पराशक्ति एक नटी की तरह वस्तुत: एक होती हुई भी अनेकों रूपों में प्रकट होती रहती है। ऐसा करती हुई वह सर्वत्र अपने भक्तों तथा सभी सज्जनों का कल्याण करती रहती है। इस बात को भी श्री धर्माचार्य ने पञ्चस्तवी में कहा है :—

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि।
सन्दृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥ (पं.स्त. ४-१८)

देवी के इन असंख्य रूपों को कई एक वर्गों और उपवर्गों में गिना गया है। उन सभी वर्गों और उपवर्गों के अधिकारों के और ऐश्वर्य के भिन्न-भिन्न स्तर हैं, जो एक दूसरे की अपेक्षा से ऊंचे और नीचे दर्जों के हैं। जैसा कि पीछे बताया गया, उन देवियों में से नीचा दर्जा गृहदेवियों, ग्रामदेवियों आदि का हुआ करता है। हिमाचल प्रदेश में ऐसी देवियों के घने सम्बन्ध अपने उपासक भक्तों के साथ अब भी विद्यमान हैं। इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण वहां स्थान-स्थान पर मिलते हैं। इन देवियों और देवताओं के परस्पर सम्बन्धों के प्रमाण वहां देवताओं के विशिष्ट सम्मेलनों में मिलते हैं। सभी देवियों में से सबसे ऊंचा अधिकार उस पराशक्ति का है जो परमेश्वर की परमेश्वरता है और जिसके बलबूते पर परमेश्वर परमेश्वर है। उस पराशक्ति की परमेश्वरता अपने बहिर्मुखी विस्तार के जिस स्तर पर पहुंच कर ही पूरे विकास में आकर पूरी तरह से निखर उठती है उसी स्तर पर एक विशिष्ट अधिकार को निभाने वाली भगवती श्री वैष्णवी देवी है। इस तरह से वैष्णवी का ऐश्वर्य बहुत ऊंचे स्तर का है और वह अपने उपासकों को जीवन के चारों फल दे सकती है। वैष्णवी देवी के अधिकार के स्तर की उच्चता पर अगले पृष्ठों में विशेष प्रकाश डाला जा रहा है।

आठ मातृकाएं :

पीछे कहा गया है कि परमेश्वर की परमेश्वरता का पूरा बहिर्मुख विकास उमापतिनाथ में ही होता है । वे उमापतिनाथ अपनी जिस शक्ति के बलबूते से ब्रह्माण्ड के प्रशासन को चलाया करते हैं उनकी वही शक्ति भगवती उमा कहलाती है । उमापतिरूप उनका पुरुषभाव है और उमारूप उनका स्त्रीभाव है । उनकी वह उमा ही उनकी ईश्वरता है । वह उमा इस ब्रह्माण्ड के प्रशासन को चलाने के लिए आठ दिव्य रूपों को लेकर के इस संसार में अवतारों के रूप में उतर कर यहां के दैवी प्रशासन के अधिकारों को निभाती रहती है । उनके उन उत्कृष्टतर आठ शरीरों को आठ मातृकाएं कहते हैं । कहीं कहीं इन मातृकाओं की संख्या सात बताई गई है और कहीं-कहीं आठ । कारण यह है कि अवतार कभी पूण अवतार बनकर आता है और कभी अंशावतार। भगवान् परशुराम और भगवान् रघुपति राम विष्णु भगवान के अंशावतार हैं । एकमात्र भगवान् कृष्ण ही उनके पूर्ण अवतार हैं । अंशावतार में उस देवता की कोई कोई ही शक्तियां अभिव्यक्त होती हैं परन्तु परिपूर्ण अवतार में उसकी सारी की सारी शक्तियां चमक उठती हैं । तभी कृष्ण भगवान् को सोलहों कलाओं वाला अवतार कहा जाता है। भगवती उमा अपनी समस्त कलाओं को लेकर इस

लोक में विन्ध्याचल पर्वत पर दिव्य शरीरधारी अवतार के रूप में उतरो उस रूप में उन्हें दुर्गा कहते हैं। विन्ध्यवासिनी भी उनका एक नाम है। दुर्गा भगवती उमा का अर्थात् परमेश्वर की परमेश्वरता का पूर्ण अवतार है। इसीलिए स्वच्छन्द तन्त्र में भगवान् स्वच्छन्दनाथ शिव भगवती से कहते हैं, "कात्यायनी, दुर्गा आदि अनेकों नामों से प्रसिद्ध होती हुई, भक्तों से प्यार रखने वाली आप अपने मानव भक्तों को वरदान देती हुई पहले से ही विन्ध्याचल पर्वत के शिखर पर अवतार रूप से उतरी हुई हैं।"

कात्यायनीति दुर्गेति विविधैर्नामपर्ययैः।
मनुष्याणां तु भक्तानां वरदा भक्तवत्सला ॥
पूर्वमेवावतीर्णासि विन्ध्यपर्वतमूर्धनि। (स्व. तं १०-१००४५)

शेष सात मातृकाओं के रूप में भगवती उमा इस मर्त्यलोक में जनकल्याण के लिए सात अंशावतारों के रूप में प्रकट हुई हैं। वे सात रूप हैं ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा। ये सात देवियां सात मातृकाएं हैं जो भगवती उमा के अंशावतारा के रूप में प्रकट हुई हैं। दुर्गा आठवीं मातृका है जो उमा का परिपूर्ण अवतार है।

वैष्णवी देवी :

भगवान् उमापति की इन आंशिक शक्तियों में से एक

शक्ति वैष्णवी देवी है। आगमशास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि ब्राह्मी शक्ति वस्तुतः परमेश्वर की परिपूर्ण परमेश्वरता का वह आंशिक रूप है जिसके द्वारा त्रिलोकी की सृष्टि हुआ करती है। परमेश्वर उस शक्ति का वितरण (delegation) जिस प्राणी में कर दें, वह प्राणी ब्रह्मा बन जाता है। अतएव किसी भी ब्रह्मा को ब्रह्मा बनाने वाली पारमेश्वरी शक्ति ही ब्राह्मी देवी है। वह ब्रह्मा की सारभुता शक्ति है। इसी तरह से परमेश्वर जगत् की स्थिति को बनाए रखने वाली अपनी वैष्णवी शक्ति को जिस शरीर में उतार देवें, वह शरीर विष्णु बन जाता है। इस तरह से परमेश्वर शिव के द्वारा किए गए वैष्णवी शक्ति के वितरण से अर्थात् (delegation of power) से ही एक एक ब्रह्माण्ड में एक एक प्राणी विष्णु बनकर प्रशासन कर रहा है। हमारे इस ब्रह्माण्ड में अपने अधिकारों को निभाने वाले भगवान् ब्रह्मा और भगवान् विष्णु दोनों ही उमापतिनाथ शिव के द्वारा वितीर्ण (delegated) शक्तियों ही के बल से अपने अपने पद पर विराजमान होकर ब्रह्माण्ड के प्रशासन को चलाते रहते हैं। इस विषय में तन्त्रालोक में आ० अभिनवगुप्त ने स्पष्ट कहा है, "ब्राह्मी परमेश्वर की ही शक्ति है। वह उस शक्ति को जिस किसी भी प्राणी को वितीर्ण करे वह प्राणी ब्रह्मा बन जाता है। इसी तरह से विष्णु, रुद्र आदि भी परमेश्वर की वैष्णवी, रौद्री आदि शक्तियों से ही विष्णु, रुद्र आदि बन जाते हैं।"

ब्राह्मी नाम परस्यैव शक्तिस्तां यत्र पातयेत् ।
स ब्रह्मा, विष्णुरुद्राद्या वैष्णव्यादेरतः क्रमात् ॥
(तं आ. ६-१७)

स्वच्छन्दतन्त्र में भी स्पष्ट कहा गया है, "वस्तुतः अधिकार वैष्णवी आदि शक्तियों के पास हो रहता है । फिर वह शक्तियां जिस जिस प्राणी में ठहरती हैं, वह वह प्राणी ब्रह्मा, विष्णु आदि कहलाता है और उस उस अधिकार को परमेश्वर की इच्छा से निभाया करता है ।"

ब्राह्मी च वैष्णवी शक्तिरधिकारपदं गता ।
यं चाधितिष्ठत्यात्मानं तत्संज्ञां स प्रपद्यते ॥
तदाधिकारं कुरुते इच्छया परमात्मनः ॥
(स्व. तं ११-२६७,८)

"इसी तरह से महेश्वर (ईशान), कुमार, वराह तथा इन्द्र को भी उमापति ने अपनी भिन्न भिन्न शक्तियां दे रखी हैं । उन्हीं के बल से वे अपने अपने अधिकारों को निभाते रहते हैं ।" चामुण्डा देवी तो उमादेवी की ही शक्ति के एक अंश का स्वयं अवतार ही है । शक्ति वितरण के इस सिद्धान्त का यह तात्पर्य नहीं कि उमापतिनाथ शिव के पास अब वे शक्तियां नहीं हैं । ये शक्तियां औरों को दे दिए जाने पर भी उसमें सदैव विद्यमान ही रहती हैं । भगवान् उमापति कभी भी शक्तिहीन नहीं बनते । इस बात का स्पष्टीकरण भी स्वच्छन्दतन्त्र में किया गया है :—

न त्यजन्ति हि ता देवं सर्वभावसमन्वितम् ।
अंशेन मानुष लोकं ब्रह्मणा चावतारिताः ॥
असुराणां वधार्थाय मानुषाणां हिताय च ।
(स्व. तं १०–१०२६)

तात्पर्य यह है, "ब्रह्माजी ने प्रार्थना पूर्वक इन शक्तियों को मानवलोक में मनुष्यों के हित के लिए और असुरों के विनाश के लिए उतारा है। यहां उतरी हुई भी ये शक्तियां भगवान् उमापतिनाथ को छोड़ती नहीं ।" तन्त्रालोक में भी कहा गया है, "ये मातृकाएं सदा स्वच्छन्दनाथ की अर्थात् उमापति शिव की सेवा करती हैं। इन सातों रूपों में भगवती उमा ही ठहरी है। ये सभी शक्तियां भी स्वच्छन्द रूप हैं और अन्य शक्तियां भी तद्रूप ही हैं, सभो ऐश्वर्य के उच्च पद पर ठहरी हैं।"

स्वच्छन्दास्ताः पराश्चान्याः परे व्योम्नि व्यवस्थिताः ।
स्वच्छन्दं ता निषेवन्ते सप्तधेयमुमा यतः ॥
(त आ. ८–२४३)

शास्त्रों के ऊपरोक्त वचनों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं :—

(१) परिपूर्ण परमेश्वर की पारमेश्वरी शक्ति का वह अंश वैष्णवी देवी है जिसके बल से परमेश्वर विष्णु बनकर त्रिलोकी को ठहरा सकते हैं और इस पर न्यायानुकूल

प्रशासन को चलाते हैं तथा धर्म और न्याय की रक्षा करते आए हैं।

(२) परमेश्वरता की स्फुट क्रियात्मिका अभिव्यक्ति भगवान् कैलासवासी शिव में अर्थात उमापतिनाथ में ही होती है। अतः पारमेश्वरी शक्तियां भी उन्हीं में सफलतया निखर उठती हैं। इसीलिए वह शक्तियां अपने अपने स्त्रीभाव प्रधान दिव्य शरीरों में ठहरती हुई उस शिव की सेवा करती रहती हैं जिसे स्वच्छन्दनाथ भी कहते हैं।

(३) लक्ष्मी विष्णुप्रिया देवी है जो विष्णु की पत्नी है तथा सदैव विष्णु के अधीन रहती हुई उसकी सेवा करती है।

(४) वैष्णवी वह देवी है जो उमापतिनाथ परमेश्वर की सेवा करती है, परमेश्वर के अधीन रहती है और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक एक प्राणी पर कृपा करती हुई उस उस प्राणी को उस उस ब्रह्माण्ड का विष्णुपद दे दिया करती है। प्रत्येक विष्णु वैष्णवी की ही कृपा से विष्णु है। तो भगवती वैष्णवी का अधिकार भगवती लक्ष्मी के अधिकार से बहुत ही अधिक ऊंचा है।

(५) दुर्गा परमेश्वर की उमा नामक शक्ति का पूर्ण अवतार है। सभी मातृकाओं में वह सब से प्रमुख है। अन्य मातृकाएं भगवती उमा के अंशावतार हैं, अतः उन्हें दुर्गा के भी अंश माना जा सकता है। इसीलिए उनकी

पूजा पद्धतियों पर दुर्गा पूजा की छाप पड़ी है।

(६) दुर्गा के अंश होती हुई अन्य सात मातृकाओं को भी दुर्गात्मक माना गया है। अतः वैष्णवी देवी को भी दुर्गात्मक माना गया है। दुर्गा की पूजा तीन रूपों में की जाती है, अतः वैष्णवी माता के भवन में भी महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की तीन पिण्डियों की पूजा की जाती है।

(७) शिव और शक्ति के परस्पर आभिमुख्य से ही परमेश्वरता की स्फुट अभिव्यक्ति होती है। अतः तान्त्रिक पूजा विधानों में अनेकां बार शिव और शक्ति को एक दूसरे के आमने सामने रखकर उनकी पूजा की जाती है। इसीलिए वैष्णवीपीठ के गर्भगृह में देवियों की तीन पिण्डियों के सामने शिवजी की पिण्डी है जिसकी पूजा व दर्शन को जानने वाला साधक ही कर पाता है। आम यात्रियों को उस पिण्डी का पता भी नहीं लगता है। पुजारियों के पास इस बात के लिए न तो समय ही होता है और न दिलचस्पी ही होती है कि यात्रियों को यह बातें समझा देवें। अमरनाथ की गुफा में भी कभी कभी दो हिमलिङ्गों के दर्शन होते हैं। उनमें से छोटा पार्वती का प्रतीक और बड़ा शिव जी का प्रतीक होता है। वे भी परस्पर आमने सामने एक दूसरे के आभिमुख्य में खड़े रहते हैं। यह बात अनुभवी योगियों के मुख से हमने सुनी है। यात्रियों को व्यर्थ ही यह शङ्का हो जाती

है कि शिव क्यों बाईं ओर खड़े हैं और पार्वती क्यों दाईं ओर। यह दायांबायांपन निचले वर्ग के देवताओं और उनकी शक्तियों में परस्पर हुआ करता है। शिव और शक्ति प्राय: परस्पर आभिमुख्य में ही ठहरते हैं।

(८) विष्णुप्रिया महालक्ष्मी का और विष्णु भगवान् का अधिकार माया में से उद्भूत और प्रकृति के परिणाम से अभिव्यक्त हुए इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड के भीतर दैवी प्रशासन को चलाए रखने का है। इस ब्रह्माण्ड का कारण बनने वाले तत्त्वों की सृष्टि मूलप्रकृति में से परिणाम के द्वारा हुआ करती है। उस जड़ सृष्टि में समुचित परिणाम को लाने वाले अधिकारी देवाधिदेव भगवान् श्रीकण्ठनाथ हैं जिनके दूसरे और अपेक्षाकृत कर्मठ स्वरूप को उमापतिनाथ शिव कहते हैं। वैष्णवी देवी का अधिकार उस उमापतिनाथ शिव के दरबार में है जिसकी शिवता से ही ब्रह्माण्ड के सृष्टि संहार हुआ करते हैं। इस तरह से वैष्णवी देवी का अधिकार महालक्ष्मी की अपेक्षा बहुत अधिक ऊंचे दर्जे का है।

(९) वैष्णवी शक्ति पारमेश्वरी शक्ति उमा का एक आंशिक रूप है जिसकी सृष्टि उमापतिनाथ की प्रेरणा से हुई है। विष्णुप्रिया लक्ष्मी का जन्म देवों और असुरों के द्वारा किए गए समुद्रमन्थन से हुआ है। इस तरह से विष्णुप्रिया लक्ष्मी से बहुत ऊंचे स्तर की देवी वैष्णवी माता है।

(१०) विष्णुप्रिया लक्ष्मी का अधिकार हमारे इस ब्रह्माण्ड के भीतर है, परन्तु वैष्णवी देवी का अधिकार उस स्तर का है जहां से अनेकों ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति और संहार का सूत्रपात हुआ करता है।

इस तरह से वैष्णवी के स्वरूप और ऐश्वर्य के विषय में शास्त्रां में से लिए गए प्रमाणों के आधार पर जो कुछ ऊपर के पृष्ठों में बताया गया उससे जिज्ञासुओं की अनेकों शङ्काएं शान्त हो सकती हैं। शेष रहती है बात वैष्णवी और भैरव के परस्पर सम्बन्ध की, उस बात पर अगले पृष्ठों में विचार किया जा रहा है।

भैरव और देवियां :

लोग किसी भैरव के साथ वैष्णवी देवी के संघर्ष की कहानियां भी सुनाते हैं। कोई लोग भैरव को उस प्रदेश का तात्कालिक राजा ठहराते हैं। कोई उसे गोरखनाथ के जोगी सम्प्रदाय का एक औघड़ सिद्ध बताते हैं। राजा हो या औघड़ सिद्ध हो, दोनों मानव ही होते हैं। मानव के पास इतना साहस और इतना बल नहीं हो सकता कि वैष्णवी जैसी उत्कृष्ट स्तर की देवी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उस पर बलात्कार करने पर उतारू हो जाए और तदर्थ उसका पीछा करे। फिर उस उत्कृष्ट स्तर के सामर्थ्य वाली देवी किसी मानव के डर से भागती जाए यह कोई विश्वसनीय बात

नहीं। अतः यह भैरव न तो कोई राजा ही हो सकता है और न कोई औघड़ सिद्ध ही हो सकता है । फिर औघड़ सिद्ध ऐसा काम करे यह बात भी विश्वास के योग्य नहीं। फिर ऐसे प्राणी तो वैष्णवी देवी की क्रोध भरी दृष्टि से ही भस्म हो सकते हैं, अतः देवी बचाव के लिए क्यों भागे।

जैसा कि पीछे कहा गया है, परमेश्वर इस ब्रह्माण्ड के प्रशासन को चलाने के लिए इसके प्रत्येक स्तर पर दो दो रूपों में एक साथ प्रकट हो जाते हैं। उनमें से एक रूप उनके पुरुषभाव का और दूसरा रूप उनके स्त्रीभाव का बहिर्मुख प्रतिबिम्ब होता है । पुरुषभाव को लेकर के प्रकट हुए अधिकारी भैरव और रुद्र कहलाते हैं और स्त्रीभाव में प्रकट होकर वे उनकी शक्तियों के आकार में देवियों और योगिनियों के रूप में प्रकट हो जाते हैं । रुद्र और योगिनियां परस्पर मिलकर ही सारा दैवी प्रशासन चलाते हैं । सांसारिक प्रशासन चलाने वाले राजाओं, राष्ट्रपतियों, प्रधानमन्त्रियों और अन्य मानव अधिकारियों को भी अपने अपने कार्य में इन रुद्रों और इन योगिनियों से ही अन्तःप्रेरणा मिलता है । इस तरह से इस दृश्यमान प्रशासन को भी वस्तुतः ये देवगण ही चलाते हैं। एक एक स्थान का अपना अपना क्षेत्राधिपति ग्राम देवता होता है और एक एक राष्ट्र का अपना अपना राष्ट्राधिपति देवता भी होता है। ऐसे अनेकों पुरुषाकार और महिलाकार देवगण भी अनेकों स्तरों के अधिकारों को निभाते रहते हैं । प्रत्येक महाशक्ति के साथ उसका अपना

भैरव होता है । जैसे भगवती महाराज्ञी (क्षीरभवानी) का भैरव भूतेश्वर है, शारिका भगवती का वामदेव है, ज्वालामुखी का काल भैरव है । जालन्धर पीठ (कांगडा) में भी देवी के मन्दिर के पास ही भैरव का मन्दिर भी है । इसी तरह से पश्चिमी उत्तरप्रदेश में हमने शाकम्भरी देवी के मन्दिर के समीप ही भैरवनाथ के मन्दिर को भी देखा । कहीं कहीं देवियों के स्थानों में उनके भैरवों की पूजा की परम्परा लुप्त हो चुकी है, परन्तु कहीं कहीं चल ही रही है । भगवती वैष्णवी देवी के स्थान में भी अभी तक चल रही है । ऐसा सुनने में आता है कि भैरवनाथ की पूजा किए बिना वैष्णवी यात्रा सफल नहीं होती है । इस कारण से वहां यह परम्परा चलती आई है कि यात्री माता के दर्शन करके वापसी पर भैरव मन्दिर में भी पूजा करते हैं । यह वैष्णवी यात्रा में पूजा को पाने वाला भैरव कौन है?

भैरव भेद :

भैरव मूलतः परमेश्वर का नाम है । वह इस जगत् का भरण व पोषण करता है । फिर यहां वह प्रमाता के रूप में प्रकट होकर रवण अर्थात् विमर्शन करता है । वह इस सारे प्रपञ्च के सृष्टि संहार आदि करता हुआ और उससे आनन्द के चमत्कार का स्वाद लेता हुआ इसके साथ रमण अर्थात् आनन्दमयी क्रीडा करता है । वह इस सारे प्रपञ्च को अपने से ही पैदा करता हुआ मानो इसका वमन करता रहता है ।

भैरव शब्द के अक्षरों से ऐसे ऐसे अर्थों की अभिव्यञ्जना होती है। इन अर्थों को दृष्टि में रखते हुए ही परमेश्वर को भैरव कहते हैं और उसकी पारमेश्वरी पराशक्ति को भैरवी कहते हैं। यह पीछे बताया गया है कि परमेश्वर को परमेश्वरता भगवान् उमापतिनाथ शिव और उनकी शक्ति उमा के स्तर पर आकर ही परिपूर्ण विकास को तथा पूरी अभिव्यक्ति को प्राप्त करती हुई पूरी तरह से सफलता को पाती है। इस कारण भगवान् उमापतिनाथ शिव को भी भैरव कहा जाता है और उनकी शक्ति उमा को भैरवी कहते हैं। भगवान उमापतिनाथ ने अनेकों रूपों में प्रकट होकर शैव आगमों का उपदेश किया। जिन रूपों द्वारा उन्होंने अभेददृष्टि को लेकर के आगमशास्त्र कहे उनके उन रूपों को भी भैरव कहते हैं। फिर शिव को श्मशानवासी माना गया है। तो श्मशानों में जिन निम्न स्तरों के रूपों में वे रहा करते हैं उन श्मशान देवताओं को भी भैरव कहते हैं। कभी कभी कोई ऊंचे दर्जे के साधक शैवयोग की साधना के परिपक्व हो जाने पर ऐसा अनुभव करते हैं कि वे शिवरूप ही हैं तथा शिव से अभिन्न हैं। ऐसे साधकों को इस मर्त्य शरीर को छोड़ने के अनन्तर प्रायः दैवी प्रशासन में कोई अधिकार दिया जाता है। उस अधिकार को निभाते हुए वे प्रायः श्मशानों में या निर्जन स्थानों में दिव्यशरीरों में चिरकाल तक निवास करते हैं। वे भी भैरव कहलाते हैं। श्रीनगर के पश्चिमी छोर पर चान्दमारी के समीप दूधगङ्गा

नहर के इस पार तुरुष्कराज भैरव का स्थान है । उस भैरव के साथ श्रीनगर के एक गृहस्थी साधक को एक बार कई दिन तक संवाद होते रहे । भैरव एक कन्या के शरीर में आविष्ट होकर संवाद करते रहे। उस कन्या के कथनानुसार उस भैरवनाथ ने उसे दर्शन भी दिए। कोई निचले वर्ग के गृहदेवता भी भैरव कहलाते हैं ; श्रीनगर में कन्या महा-विद्यालय में पढ़ने वाली एक कन्या को गृहदेवता का आवेश हुआ करता था । कन्या अतीव सुन्दर थी और गृहदेवता उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके शरीर में आवेश करता था । ऊपरोक्त साधक ने उस घर में जाकर कन्या को अभिमन्त्रित जल पिलाया और ऊंची आवाज़ से उस भैरव को डांटा। तदनन्तर कन्या के द्वारा स्मरण और आवाहन करने पर भी वह भैरव उसमें पुनः आविष्ट नहीं हुआ। हमारे एक वृद्ध सम्बन्धी को एक निर्जन स्थान में रहने वाले महादेव नामक भैरव के साथ सम्पर्क था । वह जब चाहता उसे आवाहन करता था तो वह भैरव झट उसके शरीर में आवेश करके अचम्भे की बातें करता था । एक बार एक विशेष पढ़े लिखे वेदान्ती महात्मा के साथ उस भैरव ने उस शरीर में आवेश करके ऐसा शास्त्रार्थ किया कि बेचारे वेदान्ती महात्मा अवाक् रह गए । हमारा वह सम्बन्धी निरा अपढ़ था। परन्तु भैरवनाथ उसके शरीर में प्रवेश करके ठेठ हिन्दी में बातें करते थे और अपने वैदुष्य को भी कभी कभी प्रकट करते थे। इस तरह से अनेकों ही स्तरों

के भैरव होते हैं जो सूक्ष्म शरीरों को धारण करके इस भूलोक में दैवी प्रशासन के कार्यों को निभाते रहते हैं। उनके अधिकारों के स्तर भी अनेकों ही होते हैं। उन भैरवों के कोई कोई उपासक प्राणी भी प्राय: भैरव ही कहलाते हैं। वे भी देवयोनि के ही प्राणी होते हैं। ग्रामदेवता और गृहदेवता प्राय: ऐसे ही प्राणी हैं। बाबा जित्तो और बुआ माई भी ऐसे ही भैरव, भैरवी के रूप में अभी तक झिड़ी में रह रहे हैं और अनेकों भक्तों की कामनाओं को पूरा करते आए हैं। इस तरह के भैरवों की सत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता है। उनकी सत्ता के अनेकों प्रमाण जगह जगह मिलते हैं। कोई हठपूवक निषेध करे तो और बात है।

भैरव मन्दिर :

वैष्णवी आदि मातृकाओं के विषय में यह भी कहा गया है कि ये सात मातृकाएं भगवान् स्वच्छन्दनाथ को सेवा करती हैं। स्वच्छन्दनाथ उमापतिनाथ का ही पञ्चमुख आकार है। स्वच्छन्दनाथ ने शिव नाम के दस शरीरों में प्रकट होकर कामिक आदि दस शिव आगमों का उपदेश किया। इन्हें भेद दृष्टि को अपनाते हुए कहा गया। फिर अठारह रुद्रनाम के आकारों में व्यक्त होकर विजय, नि:श्वास आदि अठारह भेदाभेद दृष्टि प्रधान रुद्र आगमों का उपदेश भी स्वच्छन्दनाथ ने ही किया। उन्होंने ही

स्वच्छन्द, चण्ड, असिताङ्ग आदि चौंसठ अभेद प्रधान आगमों का उपदेश चौंसठ भैरवों के रूप को धारण करके किया। और और प्रकार से भी स्वच्छन्दनाथ के अनेकों रूप हैं, जिनमें से वे एक एक रूप में एक एक मातृका के सहचर बनकर त्रिलोकी के प्रशासन में अनेकों अधिकारों को निभाते हैं। इसीलिए मातृकओं के विषय में ऊपरोक्त बात कही गई है। तन्त्रालोक में स्पष्ट शब्दों में इस बात को ऐसे कहा गया है :—

स्वच्छन्दास्ताः पराश्चान्याः परे व्योम्नि व्यवस्थिताः।
स्वच्छन्द ता निषेवन्ते सप्तधेयमुमा यतः।

(तं. आ. ८-२४३)

अर्थ—"वह सात मातृकाएं तथा अन्य अन्य ऐसी ऐसी देवियां सभी हो स्वच्छन्द अर्थात् स्वतन्त्र हैं और अपनी इच्छानुसार काम करती और कर सकती हैं। वह दृश्य और व्यक्त तत्त्वों से परे एक शून्याकार चेतना के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हैं। सातों ही स्वच्छन्दनाथ के आदेशों का पालन करती हैं। क्योंकि शिव की शक्ति रूपिणी उमा ही इन सात रूपों में सात प्रकार से प्रकट हुई है।" स्वच्छन्दतन्त्र में भी ऐसा ही कहा गया है :—

स्वच्छन्दास्तु पराश्चान्याः परे व्योम्नि व्यवस्थिताः।
स्वच्छन्दं पर्युपासीनाः परापरविभागतः।

उमैव सप्तधा भूत्वा नामरूपविपर्ययैः ॥

(स्व. तं. १०-१०२८,२९)

इन सात मातृकाओं का वर्णन स्वच्छन्दतन्त्र के दसवें पटल में १०१७व श्लोक से लेकर १०२५व तक दिया गया है। वहा वैष्णवी माता का वर्णन इस प्रकार से किया गया है—"उस मातृका की कान्ति चमकीले नीलकमल की जैसा है, मोतिया के हारों से और सोने क कुण्डलों से वह अलङ्कृत है तथा भगवान् उमापति की उपासना दक्षिण दिशा म बैठकर करता रहती है । वहा वैष्णवी नाम की मातृका है।" शास्त्रों के इन वाक्यो से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं :—

१ वैष्णवी एक मातृका देवी है।
२. वह भगवान उमापतिनाथ की उपासना करती है ।
३. भगवान उमापति के ही एक विशेष आकार जो स्वच्छन्दनाथ हैं उनकी ही सेवा वैष्णवी देवी तथा अन्य मातृकाएं करती हैं।
४. वैष्णवी देवी का अपना भैरव स्वच्छन्दनाथ ही है।
५. स्वच्छन्दनाथ अनेकों रूपों में प्रकट होकर त्रिलोकी के अनेकों कार्य करते हैं। उन्हीं का एक एक रूप सात मातृकाओं का अपना अपना पृथक पृथक भैरव होता है।

इस तरह से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वैष्णवी देवी का अधिपति भैरव स्वच्छन्द भैरव है । स्वच्छन्द भैरव की पूजा भैरव मन्दिर में जब की जाती है तभी वैष्णवी देवी पूरी तरह से प्रसन्न होकर यात्रियों की यात्रा को सफल बनाती है। अतः देवी का पीछा करने वाले भैरव का वह मन्दिर नहीं है। अपितु देवी के स्वामी स्वच्छन्द भैरव का है।

भैरव से युद्ध :

जिस भैरव ने देवी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका पीछा किया वह कोई निकृष्ट स्तर का भूत हो सकता है जो भैरवों का उपासक होने के ही कारण भैरव कहलाता था। मानवों में भी नागों के उपासक लोग नाग कहलाते हैं। भूत यद्यपि देवयोनि के ही होते हैं और प्रायः भूतनाथ शिव के उपासक होते हैं, परन्तु फिर भी वे सब के सब अच्छे नहीं होते। जैसे मनुष्य लोक में भी रावण जैसे शिव के उपासक प्रकट होते रहे। शिव अतीव उदार हैं। उपासना करने वाले पर अवश्य कृपा करते ही हैं, उसके पिछले इतिहास की ओर ध्यान देते ही नहीं, न ही उसके छिपे दोषों पर ही दृष्टि डालते हैं। तभी तो भस्मासुर पर भी कृपा कर ही गए। वटुकभैरवस्तोत्र में दुष्ट भूतों का भी उल्लेख आता है। वहां वटुक भैरव का एक विशेषण है :—

"दुष्टभूतनिषेवितः ।"

अर्थात् "दुष्ट भूतों से घिरा हुआ ।" तो देवी के साथ अन्याय करने पर उतारु हुआ भैरव वस्तुतः कोई भैरव उपासक दुष्टभूत ही हो सकता है या वैसा ही कोई भस्मासुर जैसा असुर हो सकता है, उत्कृष्ट स्तर का भैरव नहीं हो सकता । ऐसे दुष्टभूत को भैरवरूप शिव का उपासक जानकर ही देवी ने आरम्भ में ही उसे दण्ड नहीं दिया । वह उसके अपराध को सहन करती हुई भाग निकला । परन्तु जब सहनशक्ति समाप्त सी होने लगी या जब क्रोध का अत्यधिक आवेश हो गया तो मुड़ कर उसे मार ही डाला । ऐसी व्याख्या देवी के उस आख्यान की हो सकती है जो लोक परम्परा में सुना जाता है । उसी निन्दनीय दुष्ट भूत की विशाल काया की प्रस्तरमयी प्रतिमा भैरव घाटी में पड़ी हुई है ऐसा उधर के लोग सुनाते हैं । लोक परम्परा में "भैरव" या "भैरों" (डोगरी भाषा में) के इस समान नाममात्र से ही उस परम्परा में देवी के अधिपति स्वच्छन्द भैरव और उस दुष्टभूत रूपी भैरव में एकीकरण हुआ है और भैरव नामक राजा की या उस नाम के औघड़ सिद्ध की कहानियां लोगों ने अपनी कल्पना से घड़ ली हैं ।

एक किंवदन्ती यह भी चलती आई है कि देवी के साथ जिस भैरव का झगड़ा हुआ था, वह सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ था । इस विषय में मैं कुछ एक बातों पर प्रकाश डालना चाहता हूँ—सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ की स्थिति शरीरधारी शिव की थी । वे त्रिलोकी को भीतर बाहिर से हस्तामलकवत् जानते थे ।

देवी के सामर्थ्य की परीक्षा लेने की आवश्यकता की कोई सम्भावना ही उनके विषय में नहीं हो सकती है। वे स्वयं देवी के उपासक थे और ज्ञान तथा विज्ञान में परिपूर्णता को प्राप्त कर चुके थे। कलियुग में कौल सम्प्रदाय को पुनः चालू करने के लिए वे इस पृथ्वी पर अवतार रूप में प्रकट हुए थे। अतः उनके द्वारा वैष्णवी देवी की परीक्षा लेने के लिए ऐसा झगड़ा मोल लेना सम्भव नहीं। इस किंवदन्ती का आधार मत्स्येन्द्रनाथ की प्रसिद्धि ही है। प्रसिद्ध सामर्थ्यवान् व्यक्ति ही के विषय में ऐसी किंवदन्ती प्रचलित हो सकती है, सामर्थ्य-हीन व्यक्ति के विषय में नहीं। फिर इस किंवदन्ती का आधार कोई भी शास्त्र प्रमाण नहीं मिल रहा है। सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के विज्ञान की जानकारी जिस किसी भी विद्वान् को हो वह इस किंवदन्ती को किंवदन्तीमात्र ही मानेगा, इसे ऐतिहासिक सत्य नहीं मान सकता।

कूर्म, वाराह आदि पुराणों में वैष्णवी देवी के आख्यान मिलते हैं, परन्तु वहां न तो उसके स्वरूप की दार्शनिक व्याख्या कहीं मिलती है और न ही उसके अधिकार के स्तर पर ही कहीं कोई प्रकाश पड़ता है। एक ओर से वैष्णवी देवी का और दूसरी ओर से विष्णुप्रिया लक्ष्मी का या अष्टभुजा दुर्गा का परस्पर तुलनात्मक परिचय भी वहां नहीं मिलता है। परन्तु स्वच्छन्दतन्त्र और तन्त्रालोक के आधार पर इन सभी बातों का स्पष्टीकरण ऊपरोक्त ढंग से हो ही जाता है। देवी

के द्वारा भक्तजनों पर किए गए अनुग्रहों की अनेकों कथाएं कटड़ा में मिलने वाली पुस्तकों में लिखी हुई मिल रही हैं। इस समय भी देवी अत्यन्त विचित्र ढग से अपने उपासकों का इस तरह से कल्याण करती हैं कि लोग उन बातों पर विश्वास ही नहीं करते। हमारे परिचित दो महानुभावों ने जो अपने अनुभव बताए हैं उन्हें मैं यहां लिख रहा हूँ।

अद्भुत घटनाएं :

(१) एक सिद्ध योगी आज से लगभग बाईस वर्ष पूर्व जम्मू से देवी के दर्शन के लिए गए। जाते समय उन्होंने सङ्कल्प किया कि अपने इष्ट स्तोत्र का एक पाठ देवी को सूना देंगे। पहाड़ी पर चढ़ते-चढ़ते शरीर बहुत थक गया और गुफा में जाकर स्तोत्र पाठ सुनाने में आलस्य सा आ गया। धर्मशाला में लेट गए तो नींद जरा भर नहीं आई। शरीर में और विशेष कर पेट में दर्द होने लगा। शौच भी गए। परन्तु दर्द शान्त नहीं हुआ और आराम नहीं आया। तब उठे, नहाया और गर्भगृह में जाकर देवी को स्त्रोत्रपाठ सुनाया। वापिस आकर जब फिर लेट गए तो आराम की नींद आ गई।

(२) देहरादून के एक संस्कृत प्रवक्ता डाक्टर रघुनाथचन्द्र शास्त्री अपनी पत्नी और दो बच्चों को लेकर देवी के दर्शन को जा रहे थे। हाथीमत्था से चल रहे थे। दोनों

बच्चे कुछ कदम आगे आगे जा रहे थे और माता-पिता पीछे से आ रहे थे। इतने में बड़े बच्चे ने चिल्लाकर छोटे भाई का नाम लिया और कहा, "पिता जी! यह तो नीचे गिर गया!" सुनते ही दोनों आगे जो लपके तो लड़का पुनः चिल्लाया "पिता जी मैं भी गिर गया!" माता पिता निराश होकर जब दौड़ते हुए आगे बढ़े तो देखा कि दोनों बच्चे पगडंडी से नीचे की ओर किसी आधार पर टिके हुए चिल्ला रहे हैं। उन्होंने झट हाथ बढ़ाकर उन्हें पगडंडी पर चढ़ा दिया। ऊपर चढ़कर बच्चों ने बताया कि ज्यों ही वे नीचे गिर पड़े त्यों ही किसी कन्या ने उन्हें अपने दो हाथों का सहारा देकर गहरी खडड में गिरने से बचा लिया और ज्यों ही उन्हें पगडंडी पर चढ़ाया गया त्यों ही वह कन्या अदृश्य हो गई। ऐसी ऐसी घटनाएं बहुत सुनने में आती हैं। परन्तु हमने विश्वस्त सूत्रों से इन्हीं दो घटनाओं को सुना है। कश्मीर में क्षीरभवानी देवी के क्षेत्र में भी हमने इस इस प्रकार की आश्चर्यजनक कई एक घटनाओं का वृत्तांत विश्वस्त सूत्रों से सुना है। हमारी अपनी अनुभूति में ऐसी कोई घटना नहीं आई। कारण यह कि ऐसी अनुभूतियां दो प्रकार के महानुभावों को हुआ करती हैं। या तो उन्हें होती हैं जो अत्यन्त भावुक हृदय वाले हों। नहीं तो उनको होती हैं जिन्होंने योग के अभ्यास से अपनी जीवात्मा के मलों को काफी हद

तक धो डाला हो। अत्यन्त भावुक उपासक के भावावेश की महिमा को गाते हुए भक्त शिरोमणि श्री धर्माचार्य ने पञ्चस्तवी में भगवती से यह कहा है, "हे मां, तीनों भुवनों में केवल वे ही उपासक धन्य हैं जिन्हें आपके चरणों की पूजा करते करते शरीर पुलकायमान हो जाया करते हैं, आंखों से अश्रु-धाराएं बहने लगती हैं और वाणी गद्‌गद् हो जाया करता है" :—

आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिः शरीरैर्—
निष्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्‌गदपदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब भुवनेषु त एव धन्याः ॥ (पं. स्त. ४-४)

दूसरी ओर से ज्ञानपक्ष का ही भावपक्ष की अपेक्षा महत्त्व देने वाले ज्ञानयोगियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इसी ग्रन्थ में यह भी कहा है, "इस संसार में सर्वोत्कृष्ट उपासक वे ही हैं जो भावनाप्रधान योग के अभ्यास से समस्त जगत् को अपने शरीर के भीतर, शरीर को हृदय के भीतर, हृदय को पुरुषतत्त्व (परिमित आत्मचैतन्य) के भीतर, पुरुष को भी बिन्दु में बिन्दु को अति रहस्यात्मक परनाद में, उस नाद को भी अभेदसाक्षात्कार रूप ज्ञान में और उस ज्ञान को भी त्रिपुटी से परे ठहरे हुए असीम आत्मानन्द के वैभव में विलीन करते हुए आपके स्वरूप का साक्षात्कार करते रहते हैं।"

जगत् काये कृत्वा तमपि हृदये तच्च पुरुषे,

पुमांसं बिन्दुस्थं तमपि परनादाख्यगहने ;

तदेतज्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्दविभवे,

महाव्योमाकारे त्वदनुभवशीला विजयते ॥ (पं स्त ५-१९)

इन्हीं दो प्रकार के साधकों को देवी अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाती हुई उन्हें वांछित फल दिया करती है। केवल पढ़ने पढ़ाने वाले और तर्क वितर्क करने में ही समय बिताने वाले पण्डित तब तक शब्द जालों में और तर्क की गांठों में ही उलझे रहते हैं जब तक उन्हें या तो भक्तिभाव का आवेश नहीं होता या योग के अभ्यास से पराशक्ति के स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता। भावुक भक्त देवी से झटपट वांछित फल पा जाते हैं। परन्तु मोक्षप्रद ज्ञान का पक्का करने में उन्हें कई एक जन्म लग जाते हैं। ज्ञानी और विवेकशील योगी को इसी जन्म में स्वरूप साक्षात्कार हो जाता है और वह भगवती पराशक्ति के रूप में ही अपने आप को पहचान कर जीवन्मुक्त हो जाता है। शरीर के छूट जाने पर प्रायः दैवी प्रशासन में उसे कोई अधिकार मिल जाता है और उस अधिकार की अवधि के समाप्त हो जाने पर ही उसे विदेह-मुक्ति मिल जाती है। तब वह पारमेश्वरी पराशक्ति के साथ सर्वथा एक होकर शिवभाव में अवस्थित हो जाता है। किसी किसी जीवन्मुक्त योगी को शरीर के छूट जाते ही

विदेहमुक्ति मिल जाती है । विदेहमुक्ति की परावस्था में परिपूर्ण परमेश्वरता के चमत्कारों के अपरिमित आस्वाद का परमानन्द सदा के लिए प्रवाहरूप से चलने लग जाता है। वही परमपद है और वही आध्यात्मिक प्रगति की पराकाष्ठा है । इसीलिए कवि ने ऐसे योगी के लिए "विजयते" इस शब्द का प्रयोग पूर्वोक्त पद्य में किया है।

देवा की उपासना का अधिकार सभी को है। उसमें धर्म, पन्थ, वर्ण, आश्रम, लिङ्ग, आयु आदि का कोई भी विचार आवश्यक नहीं। आवश्यक एकमात्र देवो की भक्ति है । जो कोई भी देवो की उपासना भक्तिभाव से करे उसका कल्याण देवी अवश्य ही करती है । तभी तो पेशावर के समीप बालाकोट में अभी तक बालादेवो का स्थान विद्यमान है । बल्लोचिस्तान में हिंगलाज नामक स्थान पर हिंगुला देवी का मन्दिर है जिसके साथ गोरखपन्थी जोगियों का मठ भी जुड़ा हुआ है। शताब्दियों से वह मन्दिर और मठ दोनों मुसलमानों के अधिकार में है। अब तो केवल मुसलमान ही हिंगुलादेवो की उपासना वहां करते हैं। १९४७ के अनन्तर हिन्दु वहां कभी यात्रा को भी नहीं गए। वैष्णवी देवो की उपासना भी सभी वर्गों के लोग कर सकते हैं। जगन्माता की समदृष्टि में सभी भक्तजन एक जैसे हैं ।

———

श्री वैष्णवी देवी के अधिकार के स्तर को ठीक तरह से समझने के लिए निम्नलिखित बातों को पुन: स्मरण कराना उपयुक्त रहेगा :

इस स्थूल जगत की सृष्टि परमाणुओं से होती है । भगवान् ब्रह्माजी उन परमाणुओं को अपनी इच्छा शक्ति के बल से जोड़ जोड़ कर जगत की सृष्टि करते हैं । सृष्ट जगत को कर्मफल-भोग के नियमों के अनुसार चलाते हुए विष्णु भगवान् इसे टिकाए रखते हैं । भगवान् रुद्र जगत के कारणभूत परमाणुओं को पुन: अलग अलग करते हुए समय समय पर इस का संहार करते हैं । ये तीनों देवाधिदेव भगवान उमापतिनाथ के द्वारा वितीर्ण की गई ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी शक्तियों के स्वल्प अशों के बल से अपने अधिकारों को निभाया करते हैं ।

परमाणुओं की और आकाश आदि की क्रमिक सृष्टि मूल प्रकृति से हुआ करती है । मूल प्रकृति परमेश्वर की माया शक्ति का एक बहिर्मुख प्रतिबिम्ब है । यह वह तत्त्व है जिसे आजकल की परिभाषा में cosmic energy कहते हैं । यही energy स्वरूप परिवर्तन के द्वारा परमाणुओं और space आदि के रूप में प्रकट होती है । इसे इन रूपों में परिवर्तित करने वाले अधिकारी का नाम भगवान श्रीकण्ठनाथ है । श्रीकण्ठनाथ को ही उनके एक विशेष कर्मठ रूप में भगवान् उमापतिनाथ कहते हैं । उमापति नाथ की पारमेश्वरी शक्ति भगवती उमा है जो आठ रूपों में प्रकट होकर इस ससार के सरक्षण, प्रशासन आदि कार्यवाहियों को निभाया करती है । उसी पारमेश्वरी शक्ति के उन आठ रूपों में से एक विशेष रुप वैष्णवी है । असख्यों ब्रह्माण्डों पर प्रशासन करने वाले असंख्य विष्णु परमेश्वर उमापति नाथ की इस पारमेश्वरी वैष्णवी शक्ति के अंशों को प्राप्त करते हुए ही अपने अधिकारों को निभाने में समर्थ बन जाते हैं । वही वैष्णवी शक्ति देवी की गुफा में भक्तों द्वारा की जाती हुई पूजाओं को ग्रहण करती हैं और उनकी वांछित कामनाओं को पूरा कर देती हैं ।

ग्रन्थकार के अन्य प्रकाशित ग्रन्थ

	ग्रन्थ	मिलने का पता	मूल्य
१.	काश्मीर शैव दर्शन (हिन्दी)	रणवीर विद्यापीठ जम्मू	३०-००
२.	Aspects of Kashmir Saivism	Utpala publishers Rainawari Srinagar	३०-००
३.	विंशतिकाशास्त्रविमर्शिनी (संस्कृत)	अमृतवाग्भव शोधसंस्थान, ए-७२, जनता कोलोनी जयपुर	६-००
४.	महानुभवशक्तिस्तोत्र टीका	,,	१-५०
५.	सञ्जीवनीदर्शन (हि. अनुवाद)	,,	१-५०
६.	सप्तपदीहृदय-टीका (हि सं.)	,,	१-५०
७.	मन्दाक्रान्तास्तोत्र (हि अनु.)	श्री रविशर्मा त्रिवेदी श्री अमृत मन्दिर A.I. देवली रोड, खानपुर नई दिल्ली-६२	३-००
७.	अमृतसूक्तिपंचाशिका (सं. टी.)	राजपण्डित श्रीगोविन्द मिश्र चौबुर्जा, भरतपुर (राजस्थान)	३-००
९.	स्वातन्त्र्यदर्पण (अभिनव शैव शास्त्र) (संस्कृत कारिका बद्ध)	दुष्प्राप्य	
१०.	मार्तण्ड तीर्थ (हि.)	ज्यो. मधुसूदन शास्त्री ब्रिजबिहारा, कश्मीर	१-००
११.	कपालमोचन तीर्थ (हि.)	कपाल मोचन तीर्थ सेवकदल भट्टपुर, शोपयान, कश्मीर	१-[illegible]०

यन्त्रस्थ ग्रन्थ

१. परमार्थसार — हिन्दी व्याख्या
२. परमार्थसार — अंग्रेजी अनुवाद, व्याख्या आदि
३. स्वातन्त्र्यदर्पण — संस्कृत टीका।
४. स्वातन्त्र्यदर्पण — अंग्रेजी अनुवाद।
५. सिद्धमहारहस्य — हिन्दी अनुवाद
६. Religio Philosophic Study of Tantraloka
७. Kashmir Saivism—An Outline

त्र्यम्बक प्रकाशन, कुलगाम, कश्मीर।